पुस्तक मिलने का पता—

ठाकुर भैरूसिंह देवीसिंह,

मु० उखलाना

डि० जैन धर्मशाला

पो० अलीगढ़ (टोंक)

एक पुस्तक वी०पी० में नहीं भेजी जाती । एक पुस्तक मंगानी हो तो ॥) टिकीट भेजदें ।

निवेदन।

जैन जाति निर्णय समीक्षा, शान्त भाव से लिखने पर भी कोई ठिकाने कटुक शब्द देख पाठकवृन्द हमको दूषित न कहें क्योंकि इन सब का मूल कारण ज्ञानसुन्दर ही है। यदि उसने हमारी हमारे धर्माचार्य, गच्छ, धार्मिक ग्रन्थ और शुद्ध समाचारी आदि की झूठी बदनामी कर जैन समाज में विद्रोह फैलाने की चेष्टा न की होती तो हमें भी अपने अमूल्य समय का बलिदान करना नहीं पड़ता॥ क्योंकि अधमाधम प्राणी अपने दुर्वाक्यों से आघात पहुँचा कर शान्तात्माओं को भी उत्तेजित कर देता है। ज्ञानसुन्दर मुख चपेटी का नाम के ग्रन्थ में शाह-केशरलाल, नन्दलाल लिखते हैं कि—वस्तु वृत्ति अनेशकिन्तु अवलोकन करतां आपण ने पण उत्तम मध्यम अनेकनिष्टधम त्रण प्रकारे व्यक्ति ओ मालुम पडी आवे छे। उत्तम प्रकारनी व्यक्तिया सारासारनी शोधक-सद्सत् ने जाणवा वाली-तत्वातत्व ने जनाववा वाली अने तीतिना सर्प थने प्राणाते पण स्थान आपवा वाली होय छे॥ मध्यम प्रकारनी व्यक्तिओ वस्तुस्वरूपनोंभानकरवावाली वाह्य अभ्यंतर विचारोने आचारमां मूकवावाली होय छे पण विद्व सतोषी होती नथी। अनेकनिष्ट व्यक्तिओ मूर्खताना मार्गनु रक्षन करनारी धर्माधर्मने नहीं जाणवावाली खोटी पाडित्यनां ने पोषवावाली सत्यपुरुषो ना पवित्र विचार सागरमा पत्थरो फेंकवावाली होय छे। आज काले सम्यक ज्ञानना अभावें स्वछंद विचारो वाला केटलाक अधमाधम आत्माओ समाजमा शत्रुवत् त्रास आपी धर्म ने अधमप किए लई जवा ललचाय छे या दुष्ट विचारा शुध धार्गी भोला जनो ने भरमाववा साथे महावीर मार्ग नु उन्मूल न करवा अधम प्रयत्नो आदरी रह्या छे॥ गाढ अन्धकारना प्रदेशमां भटकता तीव्र अज्ञानताना शीखरे

चढेला या पापमय आन्दोलनों ने प्रगटावनशाला जेमना उत्तम मनुष्य जन्म नो ख्याल नही रहता दुष्टाशयोने दर्शन करवामांज हित समझे छे । तर्क शक्ति ने तीलांजली आप नार विचार बुद्धिनो विनाश करनार सत्यता ने वेची मारनार दृष्टि मर्यादानो देश निकाल करनार थो शास्त्र शैलिने ऊंडा कुंवामा उत्तारनार, आहीन मार्गीओ केवल धर्मना नाशक बनी समाजमा सडो घालो बैठा छे जेमाना एक स्थानकवासी मार्ग माथी नासी आवेला उद्भट वेष धारी ज्ञान सुंदरेपण आधुनिक सर्व महात्माओना चरित्रोमां केवल दुर्बुद्धिथी अज्ञानताथी दोष दृष्टि थी दृष्टि अन्धता थी घणाज अनर्थ-कारक हड हडता झूटा आक्षेपो मुकी जेना माप जैनपत्रना अधिपति द्वारा पुस्तको वहेंचावी पोताना दुष्टाशयो बहार मूकी समाजनी पवित्र अने दिव्य दृष्टि उपर स्याही चोपडवानु कार्य कर्युं छे ॥ ज्ञा० मु० च० पृ० २-३ । केवल द्वेष भावे या पूर्व भवनो कोई वेर आभावमां लेवा मागता होय नहीं एवा दुष्ट आशय थी तेमना कातिल कलेजाए अधमाधम हिमत चलाविने शाशन हित नहीं पण शाशन ध्वंस कारक निमितेज ज्ञान सुंदरे पोताना दुष्ट विचारो दर्शाव्याछे, समाज मा प्रगट कर्या छे ॥ हुं कई स्थितिएछु, कई योग्यताएछु, कई समर्थ शक्ति प्राप्त करी लधु छु तेनो लेस मात्र पण तेमणे विचार कर्यो होय तेम अमने लागतु नथी । ज्ञा० मु० च० पृ० ८ ॥ उत्तम सत वृत्तिओ ने एक अधम क्षुल्लक अज्ञानी पामर वृत्तिए अधमता दर्शाववा प्रयत्न करी जैन समाजना दिल दुःखाव्यां बाल्या मलगाव्या त्रास २ फैलावी दीधो । जेथी आवा अधमों ने प्रत्युत्तर आपवोज जोईये एवो अमारो शाशन उन्नति रूप अभिलाषा थवा थी (ज्ञानसुन्दर मुख

ञपेटीरा) नामनो पुस्तक प्रगट कर्यो । आपुस्तकमां तेमना दुष्ट विचारोनु खडन शास्त्रधारे युक्तिसर करवामा आवेलु छे । ते वाचकोने ज्ञान दृष्टि पूर्वक जोवाथी जणाई आय से । तेमना अ रम आशयो कोई मदमति या साधारण व्यक्तिना दिलमा विषमय असर न करे, गुरुओपर,अश्रद्धा न लावे, एज हेतु थी समाज हितनी आशाय समाज सेवा निमित्ते समाज शान्ति निमित्ते, अने आवा स्वछेदी विचारको ना दुष्ट विचारोनो ध्वस करवानिमितेज आ पुस्तक अमे सघ सेवामा मूक्यो छे । तेनो धर्म बुद्धि थी स्वीकार करी सत्यासत्य ने ज्ञान चक्षुए निहाली अशुभविचार कोना विषमय सग थी दूर रहे सो अटक शोतोथा सेवकनो सघ सेवा कांईक सफल थई मनाशे ॥ शा० मु० च० पृ० ५ ॥ ज्ञान सुदरना अज्ञानी आत्माथी प्रगटथयेला पुस्तकोने छापी वहेचवांमां जैन पत्रनो अधिपतिए जेहिमत धरावी छे ते अमने घणी आश्चर्य जनक लागे छे । जैन नाम धरावो अधिपतिनो स्थान मेलवी फरजों ने भूली जई अधर्म नु पोषन करे अवलबन आपे, सहायकार थाय ते केटली बधी खेदजनक वात छे ? स्वार्थान्धतामा लुब्ध थई आ अधम पत्र ने पोषवामा अधिपतिजी प्रवृत्त।थयाहशे के हृदय सष्ठथयु हशे के शु ह शे ते ज्ञानी जाणे अधमपत्रनुजय आपवमा काल मातो शु पण कोई कालमां थयो नथी थवानो नथी अने थशेपण नहीं । एचोक्स जाणजु । जैनावडे समाजने तरवु छे ते महन्त पुरुषो नोलोप करवानु तमारी दृष्टि अन्धता स्वीकारे एक दाग्रह केवल अज्ञानता या मिथ्याभिमान वृत्तिए तमे कही शको या लखी शको या अनुमोदन आपी शको, भले भाई तमे गमे तेम करो समाज हाल उ घे छे जागृत नथी । जो कदाच जागृत होतो तमारो

आशय केवा परिणाम ने पाम्यो हात ते तमने तरतज मालम पडी आवत ॥ ज्ञा० सु० मु० च० पृ० ६-७ ॥ आगे ढा० २ में ज्ञान सुदर को चौर तथा नीच जातीय सिद्ध किया है यथा— तस्करनी वृत्ती कदीरे धर्म उपर नवि जाय। सोमण साबू थी धूएयरे। कागडा श्वेत न थाय ॥ ५ ॥ दोष ग्राही बने सदारे दृष्टि राखे अन्ध। प्राणान्ते लेशे नहींरे। गुण ग्राहीनु गन्ध ॥६ जन्म्या जगमां जेटलारे आवातस्कराज। ध्वस करे छे धर्म नोरे। जेम तीतर उपर बाज ॥ ७ ॥ आशय दुष्ट बतावो नेरे। देखाडे छे जात। पत्थर पा क्यों होततोरे। धोबी ने धोवाथात ॥ ८ ॥ ज्ञा० मु० पृ० १० आगे ४ थी ढाल में इसको अज्ञानी उल्लु नगुरा नर्क गामी और जारज बताया गया है। यथा— अज्ञानी थइ आश्रावनीमां आव्या तमे उल्लु राज। सार असर नथी दृष्टिमा। तेथी बगाडयु छे काज। अज्ञानी ज्ञान सुंदर सुणो वाणी ॥ १ ॥ खेवरचंद नाम धरावी ढुंढक दीक्षा लीधी कातिल कुवचन छुरी चलावी। दीक्षा तोडी दीधि ॥अज्ञानी॥ ॥ २ ॥ ढुंढक ग्रासथी तृप्ति नपाम्या। आव्यां उत्तावला दौडी गुरु विना स्वयं वेश धरीने। वीर आणा मोटी त्रोडी। अ० ॥ ३ ॥ स्वेच्छाचारी थई भटकतां। आवेन तमेने लाज। मुनी आभूषणों तमने न शोभे। शोभे नर्कनु राज ॥ ४ ॥ एकल विहारी मदमतीना, बलो बन्या स्वछंदी। असत्यना सरदार बनो ने। बन्या तमे यमवन्दी अ० ॥ ५ ॥ सध जाणे छे तमारी भवई (व्यभचार वृत्ति) शु सघने सम झाओ। ज्ञानसुन्दर कोणे नामज पाड्यो। पहेलाए जब चत्ताओ अ० ॥ ६ ॥ पिता विना पुत्र कोई काले। प्रगट्या नथी विश्व माहि। गुरु विना शिष्य क्यां थी पडिया छो। एज अमोने न वाई ॥ ७ ॥ पृ० १२-१३॥ कल्पित ग्रंथो नवानी काली। रचना

ज्ञुदो चतावे। उत्तम ग्रंथो प्राचीन जोता। आलस तमने आवे ॥ ३१ ॥ दोप ग्रहण करवा थी तमोने। लाभ नहीं कदी थासे आर्त्तध्यानमा आयुष्प खोसो। जन्म्यानुसार्थक जाशे ॥ २॥ हजुकहु तमे चेतोतो सारु। वीर आज्ञा उरधारो। नहिंतो आल ह्रिढावतां पुरो। पाप नो भरशो भारो अ० ॥ ३३ ॥ पृ० १५ ॥ पांचवीं ढाल में ज्ञानसुन्दर को आचार भ्रष्ट परिग्रह धारी और अनत ससारी सावित करते हुए लिखा है कि— उच्चोराखो आचारने। क्रिया सम कितरूपजी। अन्धथई तमे शुपडों। गोती ऊडा कूपजी। ज्ञानसुन्दर तमे साम्भला ॥११॥ हिये हाथ पखुसदा। जणाई आवे छे वहारजी। कलदार सेवो तमे सदा। पतो भजे नवकारजी ॥ १४ ॥ शीख हमारी जो मानशो। तो थासे कल्याणजी। नहीं तो भ्रवोभ्रव भटकशा। लोपी श्री वीरनी आणजी ॥ २१ ॥ पृ० १६-१७ ॥ आगे ६ ढा० में लि० कि-निंदा सूत्र उकेलियों। वग पेर्टे धरी ध्यान पापी। आयुष्य एम गुमावीयों। तोयन आवी शान पापी ॥ १ ॥ निस्पृही नि स्वार्थी जेण भ्रह्यो। जिनमर्म पापी तेहनो शु निंदा करो। निंदोत मारा कर्म पापी ॥ ३ ॥ आभव पर भव मवा भवे। तारक ये मुनिराज पापी। दोप लहो शु तेहमां। न फटने नहीं लाज पापी ॥ २ ॥ आगम वाचना चालती। उघमा सुभेन काई-पापी। ककामा समझो नहीं। अमने लागेन वाई पापी ॥ १२ ॥ ज्ञानसुन्दर हवे समझीने। पाप वृत्ति करो बध पापी। शान्ति समता राखतां। पामशोध में नीगध पापी ॥ १५ ॥ पृ० १८ ।इत्यादि इस ढाल मे ३० वार पापी सबोधन से ज्ञानसुन्दर का तिरस्कार और महामूढ बताते हुए शिक्षादी है ॥ आगे ढा० ७ में लिखा है कि—भोलाजना ने ,भरमाववारे। लई बेठा अनाचार। ज्ञानी जनो समजेच

धारे। केवा तुमारा आचार। अभागी सामल जाधरी प्रीत। हुकुहुं शास्त्री नीरीन अमा० ॥ ३ ॥ धूल नांखो कदि सूर्य नेरे। झांका सूर्य नवि थाय। पडे पोताना आंख मांरे। आख समूली जाय ॥ अ० ४ ॥ खल पुरुष सत्तगधी रे। साधुवत् गनीजाय तमेके बाखल आममेरे। पाखा पृथ्वी माय ॥५॥ ज्ञानसुन्दर नमे साभलोरे कोणी पाडयो तुम नाम। सुन्दर नो सलोपता रे उ दुरधत् करो काम ॥ ७ ॥ वीणा वेलीना खेलमारे। धर्म लोयोगी जथाय। वावा वन्या जंग धूर्त्तवारे जीवित एमज जाय अ० ॥ १६ ॥ रामसनेही ना पंथमारे शोभीत्या तो आप ओटलाथी पते नहीं रे वांकी छे ए छाप अभागी ॥ २० ॥ दीक्षा तुमारी कोणे दीधि रे नान्ही मोटी जेह। पुछो पहेलीं जैसाधुनेरे उत्तर आपशेते ह ॥ २३ ॥ शठ पणो नहीं चाल शेरे साचा मतनी माह। पग वले तेतो होल वोरे। पछी ज आवजो आंह ॥ २४ ॥ इत्यादि इस ढाल मे ज्ञानसुन्दर को अनाचारी धर्म धूर्त्त खल दुष्ट नगुरा और व्यभिचारी साबित किया है। आगे ढाल ८ वीं में लिखा है कि—शु कीधोरे कालु कृत्य तमारो दीलवल तुवाची अमारु। मुनि निंदारे सूत्र वगुंजन ठारु लागेपण सहुने आकरु। कइ ज्ञान दृष्टिए लय तारे खरेश्वानतणी पेरे भसनारे। अधर्मीयई फरी डसतारे। ढूकनेरे स्त्रीय भोजनपण प्यारो ॥ १ ॥ अधमाधम वृत्ति राखी रे। भापापण दुर्मति भांपी रे। जैन पत्र अधिपति राखी रे वहे चायोरे कालु कृत्य तमारो ॥ २ ॥ हजुचेतो तो घणु सारोरे मानो कइ वचन अमारोरे ज्ञानसुन्दर गजब आकृत्य तमारु रे ॥ ७ ॥ इत्यादि इसमें ज्ञानसुन्दर को शुअर कुत्तादि बताया है। आगे ढा० ६ वीं में लिखा है कि सु लघु लज्जाहीन ने वार वार रे जेने समजण नहीं लगाररे। ज्ञानसुन्दर सांभलो वाणी

रे तम धर्म क्यों भूल थाणी रे तमारी बुद्धि पूगे बटलाणी ॥ १ ॥ इत्यादि इसमें ज्ञानसुन्दर को बडा निर्लज्ज और विटल बुद्धि तथा धर्म घातक बतलाया है ॥ आगे ११ वीं ढाल में ज्ञानसुन्दर को मुनि का वेश छोडदेने के लिये और दिया है यथा—बाजीगर बनी आस में नाचो विध विध विधरंग। होला वचन जे वीर ना तेहनों करो छो भङ्ग ॥ १ ॥ पलटाओ परिधान ने। शोभे नही मुनि वेश। शासन शत्रु थया तमे। चधोजाओ छेदेश ॥ २ ॥ दाटा आलो चढावता आवे नहीं काई लाज। ज्ञानसुन्दर तुमने शु लख्यु। बगडयु तमारु काज ॥ १० ॥ आगे १२ वीं ढाल में लि० कि शु कीधो कालो कागलरे हे मूर्ख ना सरदार। वाल्यु शु पूर्व तो वेर रे हे शद्धतणा सरकार ॥ १ ॥ पाथा मा बताव्या तमे। जे जे अनाचार। तेते लायक छो जत में तो मानोल्या निरधार ॥ ४ ॥ सडेला जे रग रग हाथ। साफ करे शु अन्यने। डूबो पोते डूबाओ बीजाने जाणा छा सहु तुमने ॥ ६ ॥ इत्यादि और भी कई विद्वानों ने इसका भडा फोड कर धिकारा है। उन्हों को देखते हमारा कटुक वाक्य कुछ भी नहीं है ॥ मै ज्ञानसुन्दरजी के कलुषित जीवन से पूर्ण परिचित हू। इसमें जितनी भी बात लिखी गई वे सब पूरी तहकीकात करके ही लिखी गई है। अन्य मुनिवर्गों के समान मेरे ऊपर भी भूटा आल चढा कर ज्ञान सुन्दर १० वर्षो से घोर जुलम कर रहा है और कई प्रकार की धमकिया देता है। इसका यह भय है कि मणसागर मेरा सर्व पाप प्रगट न करदे। परन्तु इसको मालुम नहीं कि ऐसा करने पर उल्टी मुझे उत्तेजना मिलती है। म जो क्षमा करता हू अपना साधु धर्म समझ कर। अब जब यह हमारे धर्मपर भी उतारु होगया तो लाचार होकर मुझे कुछ लिखना और

उत्तर देना पड़ा है । इसका पहेला भाग भी मंगा कर अवश्य पढ़ें । उसमें प्रार्थमिक शिक्षा, राजा हमीर का विस्तृत जीवन, अनेक जातियों का निर्णय, जैन धर्म का महत्व ओसवाल तथा राजपूतों का ज्ञातिरासा, और हमारी " चौहान वंशावली है ॥ ज्ञानसुन्दर भाई या उसके अनुयाईयों को इस ग्रंथ में लिखी हुई किसी भी बात पर कुछ बहस करनी हो सर्व सबुतियां देने के लिये हर जगह पर मैं सर्वदा तैयार रहूंगा । कमलागच्छ के समस्त संघ को सूचना दी जाती है कि वे ज्ञानसुन्दरजी को जरुर समझावें । अन्यथा इसी की जुम्मेवारी उन्हीं पर रहेगी ॥ हमने अपनी जन्म भूमी में एक संस्था खोलदी है । हमारे धर्म पर किये गयें आक्षेपों को यह ठीक उत्तार देती रहेगी ॥

कार्तिक कृष्णा ११
सम्वत १९६८

मुनीमग्नसागर

अथ सिद्धान्त मगनसागर

भाग दूसरा

आक्षेप परिहार ।

प्राथमिक शिक्षा नामक पहला भाग पूर्ण हुआ। अब आक्षेप परिहार नामक दूसरा भाग आरम्भ होता है। सुशिक्षित प्राचीन निवासी आर्य राजपूतों को चाहिये कि यदि कोई अनार्य अपनी जाति, धर्म, समाज और पूर्वाचार्यों पर आक्षेप करें तो उसका परिहार भी अवश्य करना चाहिए। म्लेछों के सिवाय कितनेक आर्य भी बिना ही कारण हमारे शत्रु हो रहे हैं। असत्य कल्पना करके हमारे पूर्वाचार्यों की हंसी उडाते हैं। साध्वियों का और विधवाओं का सतीत्व नष्ट करते हैं। बडे बडे साधुओं की झूटी बदनामी उडाते हैं। शुद्ध साधुओं की योगोपधानादि प्राचीन क्रियाओं को नष्ट करते हैं। शुद्ध परंपरागत प्राचीन समाचारी को छुडाकर लोगों को उन्मार्ग में लेजाते हैं। ऐसे पुराणे पापियों में इससमय एक ज्ञानसुन्दर नामक व्यक्ति है कि जिसने बिना गुरु के अपने आप ही जैन साधुका वेष पहन कर पवित्र जैनधर्म को

कलंकित किया है। कहते हैं कि जैन साधुका वेष में यह छिपा हुआ मुसलमान है। जैन धर्म को सर्वथा नष्ट भ्रष्ट कर देना ही इसका परम कर्तव्य है। इस ही बात का निश्चय कराके भद्रक जैनियों को इस म्लेच्छ की मायाजाल से बचाने के लिये, इसकी लिखी हुई पोथियों से कुछ नमूने लिखकर प्रगट करता हूं। ज्ञान पुष्पमाला के २५ वा अकमें ४ पृ० पर लि० "न मांस भक्षणे दोषा, नमद्ये, न च मैथुन" इत्यादि व्याख्याविलासमें श्लोक ३७ वां देखो। अब पाठकवृंद कहिये ज्ञानसुन्दर भाई के मुसलमान होने में कुछ शक है ? ऐसी २ सैकड़ों बातें इस व्याख्या वि. में लिखी हैं जिसीसे पाया जाता है कि ज्ञा. महामिथ्या दृष्टि और जैनधर्मका परमशत्रु है। यदि ऐसा न होतातो कुदेवों को नमस्कार और जैनधर्म को नष्ट करनेवाली बातों का संग्रह अपने ग्रथ में कभी नहीं करता॥ अगर कहो कि इन बातों का निषेध करने के वास्ते ही ये सब श्लोक अन्य मजहब के ग्रंथों से उधृत करलिये हैं सो तो इसमें कहीं दिखता नहीं है। दूसरे का प्रमाण या तो अपनी मान्यताको पुष्ट करने के लिये दिया जाता है या उसकी ही काट करने के लिये लिखा जाता है। जैन धर्म से प्रतिकूल बातों का उल्लेख कर उन्हीं के साथ यदि ज्ञा. अपनी तर्फ से काट लिख देता तो उसमें जैनधर्म का

[illegible]

इतना नुकसान न होता । आर्यसमाजी विद्वान कहते हैं (अनिषेधो ह्यनुमतम्) अपने ग्रंथमें लिख कर यदि उस श्लोक का निषेध नहीं किया तो वह बात उसके अवश्य ही स्वीकार्य है । इस नियम से जब ज्ञा० भाईने श्लो० नं० १४-२१-३१-३२-३७-४६-६७-७८-८८-९५ अथ दूसरे शतक में ४—२२—४४—५० बहुत से श्लोक ऐसे है कि जिन्होंका नम्बर नहीं मिलता । वह यथाप्रसंग लिख कर बताये जायेंगे । अन्यमत के श्लोक अपने ग्रंथ में लिख कर ज्यों के त्यों छोड़ दिये तो निश्चय हुआ कि उक्त लेख इसके मान्य है और जैनियों में इन बातों का प्रचार करने के लिये ही यह व्यभिचार संग्रहित हुआ है ॥ अफसोस उन मूर्ख जैनों की बुद्धि पर जो इस भ्रष्टाचारी की ऐसी २ मिथ्या पुस्तकोंको छपवाकर ज्ञानद्रव्य का दुरुपयोग करते हैं ।

जैनतर-विद्वानों को विदित हो कि इस ज्ञानसुन्दर नामक व्यक्ति की किसी भी पुस्तकों से जैनधर्मका कोई मुत्तालुक नहीं है । इसकी कृतियों से ही पाया जाता है कि यह जैनी नहीं किन्तु जैनधर्म का पूरा शत्रु है । आप व्याख्याविनोदकी पृ० १८ ना पृ० देखो- ज्ञा० लिखता है कि "नोच्चरद्यानी भाषां, प्राणैः कंठगतैरपि । हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैन मंदिरम् ॥ ८६ ॥

पलंभुक्त्वा सुरांपीत्वा । गत्वा च गणिका गृहं । हस्तिना ताड्यमानोपि न गच्छेज्जैनमंदिरं ॥ ६७ ॥ ज्ञा० भाई का अभिप्राय यह है कि प्राण जाते हुये भी यवनों की भाषा मत बोलो । हाथी मारता हो तो भी जैनियों के मंदिर में न जाओ । कसाइयों के जाकर मांस खालो । कलारों के जाकर मद्यपान करो । वेश्याओं के घर जाकर रंडीबाजी करो मगर हाथी मारता हो तो भी, जैन मंदिरमें जाकर अपनी हिफाजत मत करो । धिक् २ अब तो ज्ञानसुन्दर के अज्ञभक्तों को भी मालुम होगया कि ज्ञा० ने जैनधर्म की कैसी २ उन्नति की है ॥ अगर कहो इन बातों के खंडन के लिये ये श्लो. लिखे हैं सो तो कहीं दीखता ही नहीं है । मैंने सम्पूर्ण इस ग्रंथ के अक्षर २ देख लिये लेकिन इन २ श्लोकों का खंडन कहीं न पाया । सुतरां जब खंडन नहीं तो मंडन सिद्ध होचुका है । ऐसे नालायक को गुरू मानने वालों की बुद्धीको कोटिशः धिक्कार है । ऐसे ही अपने अन्धभक्तों को दानका उपदेश करते हुए ज्ञानसुंदरजी लिखते हैं कि–"जो देवो तो वेश्या ने दीजे, ब्राह्मणने दियां तो नरक पडीजे । वेश्याने दियां चढैगावश ब्राह्मणने दियां जाय निवंश" ॥ ४१ ॥ ज्ञान विलास पृष्ट० ३११ अर्थ स्पष्ट ही है । लेख देखने से ही आपकी श्रद्धा पाई जाती है उक्त लेखों से सुज्ञ जनों

को यह तो विदित होगया कि ज्ञानसुंदरजी जैनियों के देवगुरु और धर्म इन तीनोंका ही पूर्ण शत्रु है. यदि एसा न होता तो वह जैनोंमात्र की झूठी बदनामी कभी न करता। जिसका उल्लेख आगे चल कर किया जायगा।

प्र० तो फिर ज्ञानसुंदर किस देवता को मानता है।

उ० इसका विधान भी उसने अपने विलासमें लिख दिया है देखो व्याख्या वि० पृ०४।

कामिनी सन्निभानास्ति देवतान्या जगत्त्रये।
यां समस्तोऽपिपुवर्गो धत्तेमानसमंदिरे॥३१॥

अर्थ—विषयाभिलाषिनी स्त्री के समान तीन लोक में दूसरा कोई भी देव नहीं है। क्योंकि जगत् के पुरुष मात्र एक इसी को ही अपने हृदयमंदिरमें रख कर पूजते हैं। ठीक तब ही विचारा ज्ञानसुंदर विषयका कीड़ा होकर कुत्ते के समान विडंबना करताहै और जहां २ जाता है वहां २ धिक्कार २ पाता है। आगे चलकर ज्ञा० लिखता है कि—

असारेऽस्मिन्संसारे सारं सारंगलोचना॥४६॥

व्या० विलास पृ. ५। अर्थ इस असार संसार में हरिणी के समान नेत्रों वाली एक स्त्री ही सार वस्तु है। फिर लिखता है कि—अमैथुन जरास्त्रीणां, व्या. वि. पृ. ५० ॥ ज्ञानसुंदरजी के लिखने का अभिप्राय यह है कि

दर रोज स्त्री मात्र को अवश्य मैथुन सेवन करना चाहिये। क्योंकि मैथुन के न करने से स्त्री जल्दी ही बूढ़ी होजाती है। धिक २ ऐसी २ अनेक अश्लील पुस्तकें छपा कर दुराचारी ज्ञान, ने पवित्र जैनधर्म की जड़ पर भयंकर कुठाराघात किया है। इन पुस्तकों का नाम 'भोगविलास' देना "व्याख्याविलास" से विशेष ठीक था। क्योंकि इनों में भोग विलास की हजारों बात लिखी गई है, जिनों का आदर विलासप्रिय और नितान्त अज्ञ हमारे कवलागच्छीया भाइयों के सिवाय और कोई नहीं कर सकता। २२। समुदाय के जैन संघ को मैं धन्यवाद देता हू कि जिन्हों ने नालायक गयवरचंद (ज्ञानसुंदर) का व्यभिचारी जाण वेष छीन कर उसी दम निकाल दिया और खेद होता है हमारे कँवलागच्छी भाइयों की बुद्धिपर जो इस नगुरे को अपना धर्मगुरू मान कर पूजते हैं, और इसकी बनाई हुई झूठी पुस्तकों को छपाकर आपस में विरोध बढाते हैं। यदि फिर भी यही दशा रही तो कोई दिन इसका नतीजा बड़ा भयंकर निकलेगा॥ अस्तु अब ज्ञानसुंदर भाई के बारेमें अन्य विद्वानों के लिखे हुए कुछ लेख यहा भी दीये जाते है। जगत्प्रसिद्ध वीर शासन अखबार में ता० १५ डिसं. स० १९२२ प्रगट हुआ था कि धर्म धूर्त साधू से सावधान, समस्त भारतवर्ष के जैन श्रीसंघको विदित होकि

फलोदी मारवाड़ में एक घेवरचंद नामका व्यक्ति जैन श्वेताम्बर धर्मानुयायी साधु का वेष धारण कर के अपना नाम ज्ञानसुंदर रख लिया है और तीन वर्षों में थानापंथी होके फलोदी में ही बैठा है। इसके कलुषित चरित्र का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

पहले यह जालनेमें दीनशाह पिस्तमजी के यहां नौकर था उस वक्त अपने मालिक के रुपये चोरी से खा जाने की वजह से दावा करके इसे जेल भिजवाने के लिये वारंट निकलवाया गया। जब वह यहां से भागा और रामपुरा (मालवा) में बाईस सम्प्रदाय के पूज्य श्रीलालजी के पास जाकर के दीक्षा लेली। २२ सम्प्रदाय में यह तदाजन ८ वर्ष रहा। इस बीचमें भी इसने कितने ही अनाचार सेवन किये। जिन्होंके लिये इसको तीन वार फिर दीक्षा दिलानीपड़ी सीमराचार तो इसके दुष्कृत्योंसे तंग होकर के मीन्नाशहर में हजारीमलजी थाठिया के तहखाने में पूज्य श्रीलालजी ने इसको पत्थर के स्तंभ का चेला करके छत्रीसनी सुनाई थी। इतनी विडंबना होने परभी इसकी मती ठिकाने नहीं आई और यह भ्रष्टाचारी पणा करता ही रहा। जब लाचार होकर उन्होंने अपनी सम्प्रदाय से इसको निकाल दिया तब यह यहांपर आया और किसी भी साधुवर्गके सामिल न होता हुआ स्वच्छंद पण सम्वेगी साधु का वेष धारण

करके झूठाही अपना नाम ज्ञानसुंदर रख लिया और २२ सम्प्रदाय वालोंको बहुत ही अपशब्द हेन्डबिल द्वारा पागल की तरह नीचता धारण करके कहने लगा ॥ कुछ काल के पश्चात् यह गुजरात में गया । पर वहां पर इस नगुरे स्वच्छंदी का बिलकुल ही सत्कार न होने से यह मूढ उत्तम साधुवर्गका द्वेषी होकर के पूज्य गुरुवर्य आचार्य श्री नेमविजयसूरीजी महाराज के मुखारविंद से इसको दीगई हितशिक्षा की अवज्ञा करके आचार्य महाराज के मना करते हुए भी (मेझरनामो) नामक भ्रष्ट पुस्तक को इस जैनधर्म के शत्रू ने जैन पत्र (भावनगर) द्वारा छपवाके प्रगट कर ही दी ॥ इस नराधम के क्रुरहाथों से चित्री हुई काले कृत्यों की उस भ्रष्ट पुस्तक में सम्वेगी साधुओं की समस्त धार्मिक क्रियाओंको कल्पित ठहराने को. व समस्त जैनाचार्यों और मुनिमहात्माओं को वीतराग की आज्ञा के विराधक बतलाता हुआ, उन्हों की निंदा करके, उन्हे पतित ठहराने को. तथा आप खुद ही समस्त साधू वर्गमें उत्तम बनने का अथाग परिश्रम किया है जिसके प्रतिपक्षमें कई हेन्डबिल तथा पुस्तके प्रगट हो चुकी है ॥ जिन्हों में उसके इस काले कृत्य को बिना प्रमाणों को झूठा साबित करादिया है और उससे अपने पक्षको पुष्ट करने के लिए प्रमाण मांगे हैं ॥ परंतु इसने

अपने पक्षकी पुष्टिमें आज तक कोई यथार्थ प्रमाण नहीं दिया और खुद गुजरात से भाग करके पीछा यहां आके डेरा डाल दिया है ॥

कल्पित संवेगी की दीक्षा लेने के कुछ ही काल पश्चात् श्रीमान रूपजी को इसने अपना चेला बनाया था बाद में एक नीच (अस्पर्श) कुल के १६ वर्ष के लड़के को दीक्षा दिला के मुनि रूपसुंदरजी के नाम का चेला करदीना और उसका नाम धर्मसुदर रख दीया था । बाद यह उसके साथ में वह, खिलाफ वजए फितरी. का फेल कुदरत के खिलाफ संगत जो ताजी रात हिंदफा ३७७ का जुर्म गुदा मैथुन करने लगा । इस नीच कृत्य की रूपसुंदरजी का खबर पड़ जाने से उन्होंने धर्मसुदर को तो निकाल ही दिया और ज्ञान सुदर को कह दिया कि खबरदार अब आयदंसे यदि तुम्हारे ऐसे नीचे कृत्य देखने में आये तो तेरे हक में अच्छा न होगा । इतने पर भी इस का आचरण ठीक न होता देख रुपसुन्दरजी ने इस धर्मभ्रष्ट को छोड़ ही दिया और आचार्य महाराज श्री नेमविजयसूरिजी के पास फिर से दीक्षा लेकर अपना आत्म कल्याण करने लगे । एक अत्यन्त ही घृणित कार्य इस नीच ने यह किया है कि, १९७७ का माघ सुद ५ को कामान्ध होकर बालब्रह्मचारिणी साध्वी श्री प्रमोद श्री

करके झूठाही अपना नाम ज्ञानसुंदर रख लिया और २२ संप्रदाय वालोंको बहुत ही अपशब्द हेन्डबिल द्वारा पागल की तरह नीचता धारण करके कहने लगा ॥ कुछ काल के पश्चात् यह गुजरात में गया । पर वहां पर इस नगुरे स्वच्छंदी का बिलकुल ही सत्कार न होने से यह मूढ उत्तम साधुवर्गका द्वेषी होकर के पूज्य गुरुवर्य आचार्य श्री नेमविजयसूरीजी महाराज के मुखारविंद से इसको दीगई हितशिक्षा की अवज्ञा करके आचार्य महाराज के मना करते हुए भी (मेझरनामो) नामक भ्रष्ट पुस्तक को इस जैनधर्म के शत्रु ने जैन पत्र (भावनगर) द्वारा छपवाके प्रगट कर ही दी ॥ इस नराधम के क्रुरहाथों से चित्री हुई काले कृत्यों की उस भ्रष्ट पुस्तक में सम्वेगी साधुओं की समस्त धार्मिक क्रियाओंको कल्पित ठहराने को. व समस्त जैनाचार्यों और मुनिमहात्माओं को वीतराग की आज्ञा के विराधक बतलाता हुआ, उन्हों की निंदा करके, उन्हे पतित ठहराने को. तथा आप खुद ही समस्त साधू वर्गमें उत्तम बनने का अथाग परिश्रम किया है जिसके प्रतिपक्षमें कई हेन्डबिल तथा पुस्तके प्रगट हो चुकी है ॥ जिन्हो में उसके इस काले कृत्य को बिना प्रमाण को झूठा साबित करादिया है और उससे अपने पक्षको पुष्ट करने के लिए प्रमाण मांगे हैं ॥ परंतु इसने

अपने पक्षकी पुष्टिमें आज तक कोई यथार्थ प्रमाण न
दिया और खुद गुजरात से भाग करके पीछा यहां आके
डेरा डाल दिया है ॥

कल्पित संवेगी की दीक्षा लेने के कुछ ही काल पश्चात् श्रीमान रूपजी को इसने अपना चेला बनाया था बाद में एक नीच अस्पर्श्य) कुल के १६ वर्ष के लड़के को दीक्षा दिला के मुनि रूपसुंदरजी के नाम का चेला करदीना और उसका नाम धर्मसुदर रख दीया था। बाद यह उसके साथ में वह, खिलाफ वजए फितरी, का, फेल कुदरत के खिलाफ संगत जो ताजी रात हिंदफा २७७ का जुर्म गुदा मैथुन करने लगा। इस नीच कृत्य की रूपसुंदरजी को खबर पड़ जाने से उन्होंने धर्मसुदर को तो निकाल ही दिया और ज्ञानसुंदर को कह दिया कि खबरदार अब आयदेसे यदि तुम्हारे एसे नीचे कृत्य देखने में आये तो तेरे हक में अच्छा न होगा। इतने पर भी इस का आचरण ठीक न होता देख रूपसुन्दरजी ने इस धर्म-भ्रष्ट को छोड़ ही दिया और आचार्य महाराज श्री नेम-विजयसूरिजी के पास फिर से दीक्षा लेकर अपना आत्म कल्याण करने लगे। एक अत्यन्त ही घृणित नीच ने यह किया है कि १९७७ कामान्ध होकर ब्रह्मचारिणी

है। ऐसे नीच पुरुष के कलंकित बदन पर परम पवित्र भगवान् महावीर स्वामी का वेष रहना जैन धर्म का कलंक रूप है इसका जीवन चरित्र कैसा कलुषित और पैशाचिक कृत्यों की दुर्घटनाओं से भरा हुआ है जिसका सविस्तर वर्णन एक गयवरलीला नामक पुस्तक जल्दी प्रकाशित होगा उसमें होगा। इसकी ऐसी परम निकृष्ट आचरण देखते हुए इस नरपिशाच श्रद्धाभ्रष्ट पतित को श्रीसंघ में सामिल रखना श्री जैनधर्म के लिये महान् अनिष्टकारी है। ऐसा सुविचार करके फलोदी (मारवाड़) के समस्त जैन श्रीसंघ ने इस ज्ञानसुन्दर नामक जैन वेषधारी धर्म धूर्त साधु को श्रीसंघ से बहार कर यह घोषणा करदी है कि इसे जैनी साधु समझ के कोई श्रावक वंदना न करें और न इसे कहीं जैन धर्माश्रमों में रहने के लिये स्थान दें। इसी तरह समस्त भारतवर्ष के जैनी श्रीसंघ से फलोदी के श्रीसंघ का निवेदन है कि हर एक जगह से इस ज्ञानसुन्दर को श्रीसंघ से बाहर कर के जल्दी उक्त घोषणा प्रगट कर दें। जैसे कि आगे भी कई श्रद्धा भ्रष्टों के लिये की गई थी। इस लेख को प्रकाशित करने के लिये फलोदी के समस्त श्रीसंघ ने आज्ञा दी है। द० श्री संघ का सेवक नेमीचंद कोचर मु० फलोदी (मारवाड़) मृगशिर शु० १४ सं० १९७९। विज्ञ

पत्रों में इस लेख को मंजूर फरमाने वाले फलोदी श्री मधवार्त्ति सैकड़ों महाजनों के दस्तखत है। ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से मैंने सब छोड दिये है कुछ यथा प्रसंग फिर लिखूगा।

फलोधी के श्री संघ को मैं कोटीशः धन्यवाद देता हू कि उन्होंने इस कुकर्मी को ठीक सलाह दी। यदि सब ही लोग फलोदी के श्री संघ का अनुकरण करलें तो बेशक-जैन समाज ज्ञान जैसे नगुरे धर्मधूर्त्तों से बच सकती है। इमने सिवाय नुकसान के आज दिन तक जैन प्रजा की कुछ भी सेवा नहीं बजाई। जैनी मात्र की झूठी बदनामी के सिवाय इसके म्लेच्छ गुरु ने दूसरा कोई पाठ ही नहीं पढ़ाया था। २२ समुदाय के मुनि कहते हैं कि इसकी माता एक मुसलमान फकीर से बीसलपुर में छाती पीती थी। उस अनार्य के कलुषित वीर्य से २ पुत्र हुए। एक का नाम गयवरचन्द और दूसरे का नाम हस्तीमल था। गयवरचन्द तो अपना बाप के ही अनुरुप धोकाबाजी और ठगविद्या में एसा अतिनिपुण होगया कि जिसने बड़े बड़े धनिकों के यहा नौकरी के बहाने रह कर हजारों रुपये चारे। निदान पाप का घड़ा फूटा और जेलखाने की नौबत आने पर भागकर अपना म्लेच्छ बाप के पास आया तो उसने यह उपाय बताया।

समय इसने मौदजी का चेला नहीं रह कर पूज्यजी का पाटवी चेला बनने की बड़ी हुज्जत की। तब आंख निकाल कर पूज्यजी बोले " अय नालायक, क्या तू मेरा नाम बदनाम करना चाहता है। मौढजी तो गुरु भाई है परन्तु ले अबके तुझे मैं इस पत्थर के थंभे का चेला बनाता हूं " ऐसा कह पूज्यजी ने इसको थमे के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा कर दिया और छज्जीवनी सुना कर थंभे का चेला बना दिया। इतने पर भी इसकी अकल ठिकाने नहीं आई। और भी यह भ्रष्टाचारीपना करता ही रहा। कहते हैं कि मगनजी को लेकर यह पापी मेवाड़ में गया और कोई दो वर्षोंतक यह दोनों आपस में गुदा मैथन करते रहे। कराने का भी यह बडा ही शोख रखता है। छी २ पापीयों के पाप की सख्या नहीं रहती। कालु नाम के गाव में जब इसने कपड़ा देकर एक भंगण से काला मुंह किया तो पूज्यजी को इससे बहुत ही घृणा आगई। और सुगालचन्दजी अग्रवाले को भेजकर भेष छीन कर इसको निकाल ही दिया गया। और गावों गांव यह घोषणा करादी गई कि, न कोई इस कर्म चण्डाल को रहने के लिये स्थान दें और न रोटी दें, न पात्र दें, न वस्त्र दें, न पुस्तक दें, कुत्ते को डाल देना अच्छा, परन्तु इस कुपात्र को देना महा पाप है। जब २२ टोलों के संघ ने

को धिक्कार के निकाल दिया तो यह मूढ़ उन्हीं का परमद्वेषी बन गया और भांड के समान फिर नया वेष बनाकर फिरता हुआ जावपुर आया और ढूंढक धर्म को सर्वथा नष्ट कर देने के लिये मूर्तिपूजक जैन संघ से मदद मांगी, परन्तु उन्होंने इसको नालायक जान कुछ भी मदद न दी। निदान सं० १९-७२ में तीसरी चौमासे रहकर इस धूर्त ने जुगराजजी आस-करणजी लूणकरणजी आदि भद्रीक श्रावकों को अपना जाल में फंसाया। और प्रतिमा छतीसो आदि झूठी २ पुस्तकें और हेंडबिल छपा २ कर समस्त २२ टोलोंवालों की बदनामी करने लगा, जिन्होंका संक्षिप्त सार यहां दिया जाता है। २२ सम्प्रदाय वालों ने जब इसको म्लेच्छ समझ कर निकाल दिया और गांवों गांव कुत्ते के समान धुदकारा वो मूर्तिपूजकों की मदद पा इसने यह हेन्डबिल निकाला कि, गयवर एक अरु श्वान अनेक। सब ही भूस रहे देखा देख॥ गयवर उंची कीनी सूंढ। भाग गये श्वान सब ढूंढ॥ १॥ ऐरावत गयवर भया, श्वान भये सब ढूंढ। भूस भूस खावें खांमड़ा बिना अकल के मूढ॥ २॥ वाह क्या हि सभ्यता बापरा है जिन साधुओं ने इस को संसार के दुःखों से बचाया। गुरु मंत्र दिया। शास्त्र पढाये। पोथियां दी उन्हीं के बदले में अब यह कुत्ते बनाकर जूतों का मारता है। सच है संतोंकी संगत पाकर भी नीच जाति का मनुष्य अपनी अधमता को नहीं

छोड़ता । कहा है कि—यो हि यस्य स्वभावोऽस्ति सतस्यदुरति क्रमः श्वा यदि क्रियते राजा । किं न खादति उपानहं ॥ १ ॥ अर्थात् जिसका जैसा स्वभाव होता है वह कभी नहीं छूटता, कुत्ते को यदि राज्य सिंहासन पर बैठा दिया तो क्या वह जूता नहीं खाता ? ज्ञानसुंदर भाई तो कुत्ते से भी नीच है क्योंकि कुत्ता तो एक बार भी रोटी डालने वाले को कभी नहीं काटता और ज्ञानसुन्दर भाई तो ८ वर्षों तक २२ समुदाय वालों की रोटी खाकर भी निमकहरामी होगयी। स्मृतियों में ऐसे ऐसे पापियों की गति बताई है कि, एकाक्षर स्यापिदातारं, यो गुरु नैव मन्यते श्वान योनि शतंगत्वा चाण्डालेष्वपि जायते ॥ १ ॥ अर्थात् एक अक्षर का दान देने वाले गुरु को भी जो नहीं मानता है वह गुरु निंदक पापी कुत्ते की योनि में सो बार जन्म लेकर फिर भंगी होता है । कुत्ते के जैसा होने पर भी कुतुहल प्रियों की मदद पाकर ऐरावत बना हुआ, उत्तम साधुओं के निंदक बिचारे गयवर की भवान्तर में क्या दशा होगी सो परमात्मा जाणे । स्थानकवासी मात्र में हम को एक भी गुणवान् मुनि नहीं दीखता, यह कितनी बड़ी भारी नालायकता है । दो हजार वर्षों की स्थिति वाले भस्मग्रह का नाम लेकर जैसे तेरहपंथी श्वताम्बर भाई पूर्व के सब ही जैनों को, धर्मभ्रष्ट बताते हैं और भीषणजी को ही जैनधर्म का प्रगट कर्त्ता तथा उद्धारक या प्रचारक मानते हैं । ठीक ज्ञानसुन्दरजी भी

वैसे ही अपने पूर्ववर्त्ती सर्व जैनी मात्र को रद्दी करके भीषणजी से भी अधिक चेष्णवों के समान अपने का महावीर स्वामी का अवतार मानता हुआ फिर मे जैन धर्म की अपनी मन मानी नयी सृष्टि करने के लिये कहता है कि "भस्म ग्रह उतरी गयो हरम पाच मे हो वक्र ना अन्त के। अढाई हजार वर्षो तुज धर्म नो। था से महोदय हो इसम आप भणंत के ९५ शासन नायक तू प्रभु। खुद भटेयो हा मैं आपे आपके। महायक रो प्रभु भलो परे। मोहरा मालिक हो। मुझ मन में व्याप के ॥ ९६ ॥ ज्यारे गलानी हा धर्मनी त्यार साहायक हो तू थाय जरूर के। भक्तों को संकट टालवा। आपो आपहो तूं थाय हजूर के ॥ १०१ ॥ वीनती शतक ज्ञान विलास पृ० १५० ॥ परपरा इम चालती आयो पंचमो काल पदरासो एकतीस मे, बैठा धूम केतु विकराल। ७॥ जिन भक्ति उत्थापवा प्रगटी लुपकजाल। लिंग राख्यो सब जैन को श्रद्धा पहुंची पाताल ॥ ८ ॥ सम्वत् सत्तरामे आठ में लूंपक वज्र रग साध तेहनो शिष्य क्रोध से, लवजी कीयो उन्माद ॥ १३ ॥ मुहड़ है बांधी मुहपत्ती। डंडो धारियें दूर लटकती झोली हाथ में। गुरू निंदक मंडग्रूर ॥ १४ ॥ गुरु बहुत समझावियो। तो हा न मान्यो मूढ। दीखे वेष डरावणों, नाम धरायो ढूढ ॥ १५ ॥ धर्मदास ढूढक हुओ। अज्ञानियों में सिरदार ॥ वेष श्रद्धा जुदी जुदी नाम धरायो सत। सम्वत अठार वन्दरांत्तरे प्रगट्यो

भीषम पन्थ ॥ २० ॥ जुदी पकाई खीचड़ी, दया दान उत्थाप्यादाये मूढ चूका कहे वीर ने रुगनाथ गुरु दियो शेव ॥ २१॥ जीव मारियां पाप एक छे बचाया कहे अठार । जिन वचनों के उपरे मारे मूढ़ कुठार ॥ २४ ॥ राखोडियोपाथी बोंव । नतिरयां काचा नीर आघा कर्मी भावना । क्रिया मुकी पेहेले तीर ॥ २६ ॥ अजीय पंथा चलग पड्या नहीं माने धान्य में जाव । विचरे पंजाब के देश में जुदी ढूढक से नीव ॥ २७ ॥ आठ कोठी गुजरात में सामायिक ना पचखाण । गुलाब पथ नगुरोथयो जिण लोपी ढूढक नी आण ॥ २८ ॥ कुंडापंथी करडा घणा । जिन प्रतिमा से द्वेश पुंचगी उत्थापता । जाणे न आगम रहस्य ॥ २६ ॥ देशी की लड़-कटवा परदेशी लियो अवतार । आप थापी अभिमानियां आडंबर पूजावण हार । ३४ । स्थानक में उतरे नहीं । उष्णोदक में बतावे पाप मूल्य माड गृहस्थी घर में रहें गुप्त पाणी पीवे सेवे पाप ॥ ३५ ॥ मोटी बांध मुंपनत्ती । धोवै पेसाब से आवै वास तपसी नाम धरावता अघ घिलोई पीवै छास ॥ १ ॥ मोटा झाकी पातरा तेहपण तीन बताय । अशुची तेह में ही करें तिण ही में लाई खाय ॥२ ॥ सूत्र अर्थ के उपरे स्याही सपेतोपूर । करै आगम आशातना । कृतघ्नी क्रूर ॥ ४ ॥ वासी विलद टालै नहीं । नहीं टालै

अतु धर्म । ओघड जिम आचारण । केई छाने करें कुकर्म ॥ ५ ॥ दया दया मुख से रटेजी । करें हिंसा का काम । दिन रात मूढों बाधताजी । समुर्छिम उपजे तिण स्थान, ढूंढ को तजदो कुलिंगी को वेष ॥ १ ॥ धोवण दूध आटा ओला राखनोजी अथवा रस चलित होय । कीडा अदरकिलविलजी । परि-ठोतलाव कुँए जाय ढूं ॥ २ ॥ अनंताजी निगोदनाजी विक-रस जाय निग्लाय उत्कृष्ट देसी थकीजी । परदेशी रह्या फैल मचाय ॥ ३ ॥ नंदकुमरकी ढूंढणीजी इन्हीं पेटा में जाय काईक अधिकाई कपटनीजी । शीत्रा आदि पिछाण । मूढणी अचार जाण नहीं जो कूप करण हुसियार । काम पडे उत्तर सणोजी । तो रात्री में करें विहार ढू ॥ ४ ॥ लिंग निर्णय बहुत्तरी ज्ञान विलास पृ० १६० वर्तमान में लौंका गच्छ के सब ही यति महात्मा और श्रावक लोक वीतरागदेव की मूर्ति मानते पूजते है । लौंकाजी को जिन भक्ति उत्थापक आदि गालियें देकर उनके भक्तो की आत्मा दुखाना और गई गुजरी बात को लिखकर फिर से द्वेष फैलाना, यह भी जैन धर्म के शत्रु ज्ञानसुंदर की बड़ी भारी नालायकता है । इस समय तो जैनी मात्र का अपना भाई समझ ऐक्यता बढ़ाना अत्यावश्यक था, परन्तु दुष्ट प्राणी से भली बात नहीं बनती । २२ टोलों के आदि पुरुष लवजी स्वामी को तो ज्ञानसुंदर भाई, उन्मादी, मूढ, गुरुनिंदक, और महामृषावादि विशेषण देता

है। परंतु उक्त सर्व दोष खुद ही में भरे पड़े हैं, उन्हीं को नहीं देखता, यह कितनी बड़ी मूर्खता है। नीतिकार ठीक लिखते है कि खलः सर्षपमात्राणि, परच्छिद्राणि पश्यति। आत्मानो विल्व मात्राणि, पश्यन्नपि न पश्यति ॥ १ ॥ आगे २६ वीं कड़ी में राख का पानी को सचित्त लिखा सो भी ज्ञानसुंदर की पक्ष पात है। हां मटकी भर पानी में, चुटका भर राख डाल कर, प्राशुकजल मान लेना, यह तो तेरहपंथी भाइयों की बेशक भूल है। लेकिन १ सेर भर पाणी में पाव भर राख घुलने पर अन्तर मुहूर्त के बाद निथर जाने पर भी वह अचित्त नीर है और छे घड़ी तक वह कच्चा पानी नहीं हो सकती। उष्णोदक न मिलने पर राख के पानी को संवेगी साधु भी काम में लेते हैं आगे तेरह पंथी और २२ सम्प्रदायी क सभी जैनी साधुओं को ढूंढ़ापंथी ओघड़ पंथी आदि लिखा है यह भी ज्ञान सुंदर की परम नीचता है। ज्ञानसुंदर भाई अगर ओसवाल का अंश होता तो, नो कार गुण ने वालों को ऐसा कभी न लिखता जैनी भाईयों की बदनामी द्वारा ज्ञान सुंदर ने अपना नीच कुलत्व प्रमाणित किया है यथा-नजार जातस्य ललाटशृंग। कुलप्रसूते नैच पाणि पद्मम। यदा यदा मुंचति वाक्य बाणं। तदातदात्स्य कुल प्रमाणं ॥ १ ॥ कर्मचन्दजी महाराज तथा सोभालालजी आदि अनेक साधु इस समय भी २२ सम्प्रदाय में विद्यमान हैं, कि जिन्हों की जिन प्रतिमा पर

पूर्ण श्रद्धा है। श्रा शत्रुंजय गिरनादि तीर्थों की यात्रा करते हुए मैंने अनेक ढूंढिये साधुओं को देखा। रेखराजजी फकीरचंदजी रामचंद्रजी आदि सैकड़ों ढूंढिये साधु पंचांगी को सत्य मानते थे, और बहुत से अब भी मान रहे हैं। पूज्य सुहारमलजी मन्नालालजी उ० आत्मारामजी तथा शतावधानी रत्नचन्द्रजी विगेरे सैकड़ों साधु २२ सम्प्रदाय में, इस समय भी मोजूद हैं कि जिन्हों की विद्वता के लाखवें हिस्से भी मुर्ख ज्ञानसुंदर नहीं पहुंच सकता। २९ कड़ी में उन्हों की समाज मात्र की हीलना कर महा मिथ्यादृष्टी ज्ञानसुंदर ने महा मोहनिय कर्म बांधा है। पंचमारक युग प्रधानाचार्यों की नामावली में एक धर्मदासजी भी दर्ज है। पूज्य जयमल्लजी ५२ वर्षों तक न सोए। परदेशियों में पूज्य हुकमीचंदजी फक्त एक ही पछेवड़ा में जीवन पर्यन्त रहे। और १८ वर्षों तक निरंतर छठ २ तप के पारणे आम्बिल किया। नंदकुंवरजी ने यावज्जीवे बेले २ तप और पारणे प्राये आम्बिल करा ऐसे रंगुनी खेताजी वगेरा कई सतिया होगई और हैं। सब ही का कृतघ्न क्रूर और छाने कुकर्म करने वाले। आदि लिख कर अपने समान बना दिये ॥ यह ज्ञानसुंदरजी की जाति नाचिता का ही लक्षण है ॥ उत्तम पुरुष किसी की भी बदनामी नहीं करते, 'धोवन पीने में दोष बताया यह भी ज्ञान सुंदर की अज्ञानता है कारण आचारांग कल्प सूत्र आदि

जैनगमों में लिखे हुए २१ प्रकार के धोवन संवेगी साधु भी पाते हैं। हां जा अनछाने पानी का धोवन हो, व घड़ी से भी ज्यादे काल का हो, छाने पर जिसमें पानी के त्रस जीव निकलते हों, जिस्मे विदल का संमेल होगया हो। त्रसजीवों के मृतकलेवरों से व्याप्त हों और कुत्ते गायादिपशुओं ने जिसमें मुंह डाल दिया हो ऐसा धोवन जैन साधू नहीं पी सकते। अर्थ जल तो अजैन के घर से भी ले लिया जाता है। परन्तु धोवन हर किसी के घर से नहीं लिया जाता। जो परम पवित्र जैन धर्म की घृणा कराता है। वह भवान्तर में दुर्लभबोधी होता है। २२ समुदाय के परदेशी साधु उष्णोदक में पाप नहीं बतावे, जैनी मात्र का परम शत्रु ज्ञान सुन्दर उन्हों की झूंटी बदनामी उड़ाता फिरता है, और भाई भाइयों को आपस में लड़ा कर जैन धर्म को कमजोर करता है। इसकी सभी कृतियां भद्रक जनों को उन्मार्ग में ले जाती हैं। परलोक का तो इसको कुछ भी भय नहीं। गिरधर कवि का झूंठा ही नाम लेकर स्थानकवासी मात्र के लिये लिखता है कि ढूंढिये इसी संसार में पेट भरने के काज। गद्धा जिम भमता फिर, जिम तीतर पर बाज। जीम तीतर पर बाज, लाज इन्हों को नहीं आवे। मले कपड़े पहर ज्ञान उलटा ही सुनावे कहे गिरधर कविराय। कहो ये किसके मूंडियां आदि धर्म उठावे पापी नरक में जावे ढूंढिया॥ १०८॥ तेरहपंथी भाइयों के लिये

भी लिखता है कि तेरापंथी धर्म में नहीं दया नहीं दान। चूका कई प्राणी ने धरे उन्हीं का ध्यान, धरे उन्हीं का ध्यान ज्ञान बर्जी नर ही सुनावे। पाप नरक में यह लोगों को साथ ले जावे। कहे गिरधर कविराय सुनो वे रथ पंथी। नहीं दया नहीं दान पड़े हैं तेरापंथी॥ १०॥ ज्ञान विलास ष्ठ० ३०४॥ यह २ कलकमनों के नाम से निन्दा जनक छपी थी आज्ञाओं की रचना करने वाली अन्य, यह जमाना के ध्यानान ग्रन्थ ज्ञानसुंदर की कितनी यही गति नालायकता है। जैन शास्त्र तो कहता है कि पाप से एक बार गुण गाना भी नरक में कभी नहीं जा सकता परन्तु प्रवेश इन कलकर की इसाल में स्वेताम्बरवादी के साथ में निंदा भी किन कर नरक पावेगा। कहा है कि निंदा नरक लेजाय, निंदा अत पैर बढावे। निंदा गुणों का नाश, सिर पर दाग लगावें। निंदा करे फजीत, निंदा दुर्गुण सब लावें। निंदा मान का भंग निंदारी कैद करावे। चित चंचल चौरी मिल्यो निंदक धावे मेल। ज्ञानी पार्श्वं ना करे सब कर्मों का खेल॥ १॥ कर्माधीन होकर कहीं पर तो यह हैंसी अपना ज्ञानसुंदर नाम रखाता है। कहीं पर गयवरचन्द तो कहीं पर महात्मा रिपमदासादि नाम प्रगट करता है। जोधपुर की शाकद्वीपी ब्राह्मण सभा इस धर्म धूर्त को महात्मा के वेश में दुरात्मा कह कर संबोधित करती है और कहता है कि इसने

बिलकुल बे सिर पैर की ऐसी अंड बंड बातें लिखी हैं कि जैसे किसी पागल का प्रलाप हो या किसी नशेबाज का नशे की हालत में मुंह खुलगया हो अथवा बहुत दु'खी क्रोधी या किसी मृत्यु शय्या पर पड़े हुए व्यक्ति के अस्पष्ट और असंगत उद्गार हो। देखो ढाल में पोल पृष्ठ ३। अजमेर निवासी राधावल्लभ धीरलाल लिखते हैं कि इसका विद्याभ्यास बिलकुल ही अल्प है यहा तक कि अपना नाम भी शुद्ध लिखना नहीं जानता। इसके लेखों में इतनी अशुद्धिया है कि जिनका शुद्ध करना अत्यन्त कठिन है। अपने मन घडत लेखों से इसने सर्व साधारण को पूरा धोका दिया है। इर्षा द्वेष भरे हुए मिथ्या कपोल कल्पित गपोड़ों को सत्य प्रमाणित करने की इच्छा से अशुद्ध और असभ्य लेख लिखने वाले को महात्मा लिखना अनुपयुक्त समझ मैने इसको 'दुरात्मा' का सबोधन किया है। देखो ऋषभदास की गप्पें पृष्ट (ख०) अस्तु जब तीवरी में २२ सम्प्रदाय वालो ने इसके पाप खोल दिये तो वहांसे लज्जित होकर भांडके समान वेश बनाये हुए यह शुद्ध ओसिया गया। उस समय वहा फलोदी निवासी सेठ श्रीमान फूलचदजी गोलेछाजी की तरफ से सर्व जैन मंदिर और धर्मशाला का जिर्णोद्धार हो रहा था। और एक जैन बोर्डिंग भी उक्त सेठ साहब की तरफ से खोली गई थी जो आज दिनो दिन उन्नति पाती ही जारही है॥ वहा स्थानक वासियों के न होने से इस धर्म

धूर्त ने भद्रक सेठ फूलचंदजी को अपनी माया जाल में खूब ही फसया और झूठी २ पुस्तकों को छपवाने के लिये उक्त सेठजी के हजारों रुपये इसने बरबाद कर दिये। फिर भी इसकी तृष्णा बढ़ती ही गई। तीर्थ ओसियाजी में यात्रियों की बड़ी भीड़ भाड़ देख कर इस धर्म ठग ने अपने पास सेठजी के हाथ से एक पेटी रखवाली। उसमें ज्ञानकोष के बहाने धोका देकर इसने आगंतुक यात्रियो से सैकड़ों रुपे ठग लिये। १२ महिनों तक तो किसी को मालूम ही नहीं हुआ कि यह धर्म तस्कर अपने पास कई चाबियां रखता है। परन्तु जब पेटी खोली गई तो कुछ भी नहीं निकला, सब की सब रकम, न मालूम कहां उड़ादी गई। ध्यान करने के बहाने पर यह ढोंगी रात के समय कहीं बहार जाया करता था। अनुसंधान करने पर एक दिन ढेढों के मोहल्ले में पता लग गया। बस उसी दिन से परमनिकृष्ट कुलोत्पन्न समझ कर सेठ फूलचंदजी ने इस अधर्म को वंदनादि सर्व सत्कार करना छोड़ दिया। और मध्यस्थभाव से देखने लगे। अपना पाप प्रगट होता देख, यह धूर्त वहां से रवाना हो फलोदी चला गया। वहां परम कँवलागच्छ के कतिपय सज्जनों को तो इस धूर्त ने अपनी मायाजाल में इस प्रकार फसालिया कि अब उन्हीं का उद्धार ही नहीं हो सकता। उन भाइयों को इस कपटी ने यह विश्वास दिया कि अगर तुम लोग तन मन धन से मुझे मदद देते

बिलकुल वे सिर पैर की ऐसी अंड बंड बातें लिखी है कि जैसे किसी पागल का प्रलाप हो या किसी नशेबाज का नशे की हालत में मुंह खुलगया हो अथवा बहुत दुःखी क्रोधी या किसी मृत्यु शय्या पर पड़े हुए व्यक्ति के अस्पष्ट और अनर्गल उद्गार हो। देखो ढोल में पोल पृष्ठ ३। अजमेर निवासी राधावल्लभ धीवूलाल लिखते हैं कि उसका विद्याभ्यास बिलकुल ही अल्प है यहां तक कि अपना नाम भी शुद्ध लिखना नहीं जानता। इसके लेखों में इतनी अशुद्धियां है कि जिनका शुद्ध करना अत्यन्त कठिन है। अपने मन घड़त लेखों से इसने सर्व साधारण को पूरा धोका दिया है। इर्षा द्वेष भरे हुए मिथ्या कपोल कल्पित गपोड़ों को सत्य प्रमाणित करने की इच्छा से अशुद्ध और असभ्य लेख लिखने वाले को महात्मा लिखना अनुपयुक्त समझ मैंने इसको मुढात्मा का सबोधन किया है। देखो ऋषभदास की गप्पें पृष्ट (ख०) अस्तु जब तींवरी में २२ सम्प्रदाय वालो ने इसके पाप खोल दिये तो वहां से लज्जित होकर भांडके समान वेश बनाये हुए वह मुढ ओसिया गया। उस समय वहा फलोदी निवासी सेठ श्रीमान फूलचदजी गोलेछाजी की तरफ से सर्व जैन मंदिर और धर्मशाला का जिर्णोद्धार हो रहा था। और एक जैन बोर्डिंग भी उक्त सेठ साहब की तरफ से खोली गई थी जो आज दिनो दिन उन्नति पाती ही जारही है॥ वहा स्थानक वासियों के न होने से इस धर्म

धूर्त ने मद्रास सेठ फूलचंदजी को अपना माया जाल में खूब ही फसया और झूंठी २ पुस्तकों को छपवाने के लिये उक्त सेठजी के हजारों रुपये इसने बरबाद कर दिये। फिर भी इसकी तृष्णा बढती ही गई। तीर्थ ओसियाजी में यात्रियों की बडी भीड़ भाड़ देख कर इस धर्म ठग ने अपने पास सेठजी के हाथ से एक पेटी रखवाली। उसमें ज्ञानकोष के बहाने धोखा देकर इसने आगंतुक यात्रियों से सैकड़ों रुपे ठग लिये। १२ महिनों तक तो किसी को मालूम ही नहीं हुआ कि यह धर्म तस्कर, अपने पास कई चाबियां रखता है। परतु जब पेटी खोली गई तो कुछ भी नहीं निकला, सब की सब रकम, न मालूम कहां उड़ादी गई। ध्यान करने के बहाने पर यह ढोंगी रात के समय कहीं बहार जाया करता था। अनुसंधान करने पर एक दिन ढेढों के मोहल्ले में पता लग गया। अब उसी दिन से परमनिकृष्ट कुलोत्पन्न समझ कर सेठ फूलचंदजी ने इस अधर्म को वंदनादि सर्व सत्कार करना छोड़ कर मध्यस्थभाव से देखने लगे। अपना पाप [illegible]
यह धूर्त वहां से रवाना हो फलोदी [illegible]
कँवलागच्छ के कतिपय सज्जनों [illegible]
मायाजाल में इस प्रकार फंसा [illegible]
ही नहीं हो सकता। उन साइयों [illegible]
दिया कि अगर तुम लोग [illegible]

रहे तो निस्संदेह मैं रत्नप्रभसूरिजी का चेला बन कर मरे हुए कंवलागच्छ को पुनः संजीवन कर दूंगा। और तमाम गच्छों को रद्दी कर समस्त श्रीमाल पोरवाड़, तथा ओसवालों को एक कंवलागच्छ में ही ले आऊंगा। तब मदन शिव मेघा को तो यहां तक विश्वास दे दिया कि यदि आप लोग मुझको अच्छा साधु करके पूजा दें, तो मालामाल कर दूंगा। घर छोड़ परदेशों में धनोपार्जनार्थ जाना न पड़ेगा। लोभ वश और भी कई श्रेष्ठ मक्खिकावत् फंस गये। निदान कंवला गच्छ के यति और मथेरणों का अनादर कर उस स्वच्छंदी ने अपने ही हाथ से रत्नप्रभसूरि की जड़ मूर्ति के हाथ में वास क्षेप करा दिया और खरतर गच्छ की साध्वीयों से बोला "तुम अपने हाथ से लेकर मेरे ऊपर डाल दो" तब साध्वीएँ इनकार करती ही हुई। नगुरे ने तो मूर्ति के हाथ में से वास चूर्ण उठा कर अपने सिर पर रख लिया। और दुनिया में ढंढेरा पीट दिया कि मैं श्री उपकेश गच्छ रत्नप्रभसूरि का शिष्य हूं। लोगों ने पूछा वह कौन और कब हुआ तो, यह मूर्ख अपने गुरु को आज से २४०० वर्षों के भी पहेली और पार्श्वनाथ के ६ पाट पर बताता है। क्या ही मूर्खों की लीला है। बाप की मृत्यु के ढाई हजार वर्षों के बाद उत्पन्न होने वाला पुत्र अवश्य ही जारज होता है। ऐसे २ पापियों ने ही गुरु परंपरा को नष्ट कर जैन, धर्म का सत्यानाश किया है।

और फिर भी न मालुम कहां तक इसको रसातल पहुंचायेंगे। विना गुरु के अज्ञानों को मूर्ति के पास से जैन दीक्षा नहीं आसकती विचारे अज्ञान ऊदर को इतना भी बोध नहीं कि मूर्त्ति केवल ध्यान का आलम्बन, साक्षी व यादगिरी के लिये ही होती है। दीक्षा लेने की विधी में अमुक पाठ शिष्य को और अमुक पाठ गुरु से उच्चारण करना पड़ता है। मूर्ति के सामने वैसा न ही हो सकता। जैन मुनि को गुरु प्रथम सामायिकारोपण (लघु दीक्षा) कराते हैं और फिर योग वहन कराके पंच महाव्रत (बड़ी दीक्षा) देते हैं, और अपना कुल गण शाखा आदि बताते हैं कि जिससे वह फिर उन्मार्ग में न पड़े। खैर अब भी कुछ बोध हो तो ज्ञानसुन्दर भाई अगवूलिया सूत्र जरूर देखें, और अपनी अज्ञानता पर खेद प्रगट करें, तथा मिथ्याभिमान छोड़ कर किसी कँवलागच्छ के ही यति के पास यथाविधि योग्यता मुजब व्रत लें, जिससे कुछ आत्म कल्याण हो। आत्मारामजी जैसे समर्थ पुरुषों को भी गुरु के ही पास दीक्षा लेना पड़ा है। जैन शास्त्रों में ऐसा कहीं नहीं देखा गया कि जातिस्मरणादि अतिशय ज्ञान वर्जित कोई मनुष्य निरजीव मूर्ति के पास साधु का वेश पहन कर स्वयं ज्ञान सुन्दर के ही समान निरक्षर भट्टाचार्य बन बैठा हो। यदि ऐसा होता ज्ञानवत् भांड और बहुरुपीयादि भी जैन साधु बनेगा। अस्तु अब कॅवलागच्छा माइयों ने इस इच्छा

पेटी में डलवाता था। और रात को पक्ष में, उसी धर्माश्रम के अंदर उसी धर्मादे की रकम से खराब स्त्रियों के साथ अब्रह्म सेवन करता था। धिक्कार ? । जैन शास्त्रों में लिखा है कि—अन्यस्थाने कृतं पापं। धर्मस्थाने मुच्यते। धर्मस्थाने कृतपापं। वज्रलेपाय जायते ॥ १ ॥ अन्यस्थानों पर किया हुआ कठोर पाप धर्म के ठिकाने आने से ही छूट जाते हैं। मगर धर्माश्रम में रहकर यदि मनुष्य पाप कर्म करलेता है तो वह पाप कोटान कोटी भवोतक भी वज्र के लेप के समान नहीं छूटते। जिस मकान में सामायिक पोषध प्रतिक्रमण प्रभु भजन पूजन व्रत नियम स्मरणादि धार्मिक क्रियाएँ होती हैं। उसी मकान में ज्ञान सुंदर नाई ये आश्रव सेवन करता है। यह कितना बडा भारी जुल्म है। नरसिंह वीर केसरी के गजारव से सुन्दरश्री का अड्डा तो नष्ट होगया। परन्तु आश्चर्य है कि धर्म बगीचे को नष्ट करने वाले दुष्ट गयवर पर अभी तक कराल मुख केसरी की क्रूर दृष्टि तक भी नहीं पडती। जोधपुर के सिवाय फलोदी से भी बहुतसी रकम मंगा कर इस धर्म घातक ने उनरंडा स्त्रियों को दी है। जब पाप का घड़ा फूटने पर आया तो जोधपुर से रवाना होकर यह धूर्त गुजरात में चला गया। वहां पर इसको नगुरा स्वच्छन्दी और महामूढ तथा व्यभिचारी समझ कर किसीने कुछ भी सत्कार नहीं किया। फक्त पालीताणे में हरीसागरजी और सूरत में रत्नविजयजी

की मदद से कुत्ते के समान रोटी मिलती रही। गुजरात में जैनों की योगोपधानादि धार्मिक क्रियाओं का ठाठ बाठ, जिन पूजा तीर्थ यात्रा संघसमेलादिको का बड़ा भारी मरघस, तथा तपागच्छी संघवेगी साधुओं का अति सन्मान और अपना अनादर देख कर यह मूढ़ जल कर खाक हो गया। और अपनी हार्दिक दाह बुझाने के लिये झगड़िये तीर्थ में आकर तपागच्छ के समस्त आचार्य उपाध्याय पन्यास साधु साध्वी और श्रावक श्राविकाओं की बदनामी के गीत बना २ कर गाने लगा। तब गुजराती भाइयों ने नालायक समझ कर इसका वेश छीन लेने का विचार किया तो यह धूर्त वहां से भाग कर पीछा मारवाड़ में आगया। और हमेशा फलोदी में ही पड़ा रहने के अभिप्राय से जसवत सराय में डेरा डाल कर अपना घृणित जीवन व्यतीत करने लगा। उस समय फलोदी में गीतार्थ साधुओं के न होने से इस धर्मधूर्त ने जसवंत सराय में खूब ही अड्डा जमा लिया, नाना भांति से लोगों को ठग कर हज़ारों रुपे फिर इकट्ठे कर लिये। अपने दृष्टी रागियों में से किसी को मुनीम किसी को रोकड़िया आदि बना कर धर्म की रकम से खूब गुलछरे उड़ाने लगे। अधिक मास में खरतर और तपा दोनों गच्छों के अलग २ पर्युषणों में स्वप्नादि के हज़ारो रुपया की समस्त आमदनी, को इस धर्मधूर्त ने अपनी ही संस्था में

जमा करा दी। इस संस्था में आज दिन तक करीब पौने द
लाख रुपये आचुके। इतनी बड़ी रकम से अगर जैनागमों
का जीर्णोद्धार कराया जाता तो, बेशक जैसलमेर पाटन अह
मदाबाद आदि के समस्त प्राचीन जैन ज्ञान भंडारों क
जीर्णोद्धार सहज में ही हो जाता। परन्तु खेद है मारवाड़ के
जैनों की बुद्धि पर कि उन्होंने गाँएँ दोह कर कुत्तों को
पिलाया। तब ही तो आत्मारामजी महाराज ने जैन धर्म
विषयी प्रश्नोत्तर ग्रंथ में वर्त्तमान जमानों के जैनियों को नाला
यक लिखा है॥ इस रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला के धन के ४
हिस्सों में से दो हिस्से तो अ० प० जैन व पुस्तक मुद्रकों
को दिये जाते हैं। एक हिस्सा मुनीम गुमास्ते रोकड़िये व
प्रकाशकों को मिलता है। और एक हिस्सा ज्ञानसुन्दरजी
के भोग में काम आता है। विषयवर्द्धक और पुष्टी २ कारक
दवाएँ मंगता है और ज्ञान सीखने के बहाने बुला कर अपने
भक्तों की ही बहू बेटियों को बिगाड़ता है। टीका चूर्णी भाष्य
निर्युक्ती आदि का एक अक्षर भी यह मूर्ख नहीं जानता। केवल
भाषा और टब्बा टब्बी सुना कर भद्रक लोगों को जैन धर्म
से पतित करता है। कमला गच्छ के सिवाय हमारेः—

तपागच्छ वाले भी कितने ही लोक इस धर्म भ्रष्ट और
जैन मुनियों के निंदक को साधु समझ कर मानते पूजते हैं

अपना धर्म गुरु मान कर चौमासा करवाते है और व्यर्थ ही हजारों रुपये खर्च कर इस जैन धर्म के शत्रु की बनाई हुई झूठी पोथियों को छपवा कर, शुद्ध जैन धर्म की बदनामी करवाते हैं, कि जिससे बहुतों के बोध बीज का सर्वथा नाश होकर सिवाय नुकसान के कुछ भी लाभ नहीं होता ॥ हमारे तपागच्छीय भाइयों के हितार्थ अब मैं कुछ उन बातों का दिग्दर्शन कराता हूं कि जिनमें ज्ञानसुन्दरजी ने तपागच्छीय संवेगी साधुओं की झूठी २ बदनामी गाई है।

लिखता है:—कि संवेगी नाम धरायने, दूरो मूक्यो हो संवेग नो रंग के। लोक लजावै, वापडे, न्यारा २ हो जाणो सोहना ढंग के ॥ १२ ॥ वेष क्रिया पदवी-तणा, करे झगडो हो माहों माहि झूठ के। अनन्तानुबन्धी राखी रहा चाली हो, करे माया कूट के-१३ इत्यादि ज्ञान-विलास इसमें आपका अभिप्राय यह है कि वर्तमान समय के सब संवेगी साधु अनन्तानुबन्धी की चौकडी वाले मिथ्याती है इन्हों में मार्गानुसारी और सम्यक्त्व पण का भी गुण नहीं है । आगे चल कर फिर लिखते हैं कि पापार भ करावता, सदोषितले अशन पान के । राख रखावे परिगहो, करे आडंबर हों झूठा तोफान के १७ टीकिट कारट कवर घणा, राखे पासे होंश। मोटों मसान के नामामंडावे

गृहस्थना कलयुगिया जाग्या शैतान के १८ लैख
पंडित राखे साथ में नौकर चाकर हो साथ रा
साध के, सिद्ध साधक जोड़ी मिला भोला जीवो
हो पकडे जिम व्याध के १९ झूटा बहाना चलावत
तार टीपाल हो लेता थी पी आपके । मणिआ
मोकलावता, भज कलदार हो, बैठा जपै जापके ॥२०
चौमासानी विनती करे श्रावक हो तब बोले रकम
वेचार आठ हजार में दश हजार हो बोले हर द
॥ २१ ॥ चौमासेनी पेदासने, पोते मंगावी हो रा
निज पास के । नगद नारायण पेलो करे । भोलाज
वो ने हो आपे बहु त्रास के ॥ २२ ॥ उपधान बाह
कढावता, पैसा रोकडा हो तिम उजमणो माहि के
दीक्षा यात्रा तपव्रत में लूटा लूटी हो करे बापडा नार्
के ॥ २४ ॥ ग्रंथ लिखाव कारणे, ग्रंथ छपवा हो मां
पैसा रोक । लाओ लाओ करता फिरे कलियुगिया ह
हारे संयम फोक ॥ २५ ॥ धर्मशाला उपासरा मठधार
हो आपणा करि लीध के । खाता पोता राखे तेहना
मुनि पद ने हो जलांजली दीध पाठशाला था
आपणी टीप मंढावे हो । बापड़ा गामों गाम
मायोना मजुरीया फिरे घणा । लज्जावे हो प्र
पीलो नो नाम ॥ २८ ॥ व्याज वणज करे घणा । भाड

लेवें हो करे घीर उद्धार। केस लडे कोँ रटचडे। पीली पलटेण ना हो यह छै समाचार ॥ २६ ॥ छापा परस्पर आपता। देता वलेन्जो लडता मांहो मांहि। लोक लेजावे वापडो, पीताम्बरी हो अब, बिगडता जाय के ॥ ३० ॥ इत्यादि

इन १७ से ३० तक में तपागच्छ के सभी संवेगी साधुओं को ६ कायजीवों के आरंभ करने वाले और परिग्रह धारी साबित किये हैं। फिर आगे लिखता है कि

साधुपणों न पाले कदी रुडो कहवे हो प्रभु गृहस्थावास। उभये भ्रष्ट महापापीया पीला कपड़ा नों हो वाले सत्या-नाश ॥ ३६ ॥ इसमें समस्त तपागच्छीय संवेगी साधुओं को गृहस्थों से भी महाभ्रष्ट बताया है। फिर आगे उन्हीं को शिक्षा देते हुए लिखता है कि —भवाभिनन्दी वापडा, सुख शील्या हो पामर थाता जाय चूडाणं, चूडियाणं, न्यायथी कलयुगियां हो दुर्लभ बोधि न्याय ॥ ४७ ॥ माया कपटाई समाचरे मान वढ़ाई हो, इर्षा मृषा वादहित शिक्षा माने नहीं। अन्योअन्य हो करे वाद विवाद ॥ ४८ ॥ पास स्थाने कुशी लिया. आहा छंदाहो संसक्तानुसार। उसन्ना नित्य मिंडिया। व्रत खंडियों हो, बहुतसमुदाय ॥ ५० ॥ पंडित नाम धरावता

सुखे ना हो करे काम। आचार्य नाम धरायने आना
प्यार हो सेवे ठामो ठाम ॥ ५१ ॥ कनक कामनी लालचे
करे चाला हो अपरंपार ॥ ज्ञा० वि० पृ० ३४५ ॥ समीक्षा
इसमें तपागच्छ के तमाम साधु, पन्यास, और आचार्यों को पूरे
व्यभिचारी बताये गये हैं ॥ अब संपूर्ण भारतवर्ष में मात्र
जैनी साधुओं की नास्ति करके ज्ञानसुन्दर खुद युग प्रधान
चार्य बनता है। और गृहस्थों को अपने ही पास दीक्षा लेने
की सलाह देता है। दुकानदारी चलावता। कलयुगीया हो।
मिल्या कर्मसंयोगी, लोक पुकारे किण खने उत्तम मुनिनों हो
प्रायः आज वियोग ॥ ५७ ॥ सद्गुरु योग विना प्रभु अक
लावे हो, घणां गृहस्थ लोक। किणने पास दीक्षा लेऊं किम
सुधरे हो मारो आपर लोक ॥ ५८ ॥ जैसी दशा पीलां तणी
वेसी ढूंढकोनी हो थई आचार। खामी नहीं कोई बात म
तुं जाणे हो तसु सब प्रकार ॥ ३८ ॥ शाशन रक्षक देवता उठी
जागो हो थयो सावधान। सहायक करो शाशन तणा अम
उपर हो। थाहो महरवान ॥ ९२ ॥ युग प्रधान मुनिराजजी
दोय सहस्र ने हो। चारहुसे जेह तीरण तारण कालिकाल में
भव्यजीवों ना हो उपकारक तेह ॥ ६३ ॥ शाशन पड तो देख के तव
उपन्या ही दिल में बहुदाझ। साहाय करो कोई जीवनें जिमसुधरे हो
स्वपरना काज ॥ ६४ ॥ ज्ञा० वि० पृ० ३५० समीक्षा व्यभि
का कीडा होकर भी, वेष विटंबक ज्ञानसुन्दर, पागल

के समान अपने को स्वछंदता में युग प्रधान समझ कर, शाशन देवताओं की मदद से जैन समाज को उन मार्ग में लेजाना चाहता है। परन्तु इस अणाचारी और नगुरा समझ कर उन्होंने आज दिन तक कुछ भी मदद न दी और यह संदेश भेजा कि माया विनाशे ज्ञान, माया अज्ञान बढावे माया गुमावे मान माया प्रतीत उठावे। मायालावे मिथ्यात्व, पशु की यानी पावे। माया नरक निगोद, चौराशी बाट बतावे। कपट कुटिलता, दम्भ त्यज, भज श्री गुरु के पाय। ज्ञान साम्यरस पान कर, हृदय शुद्ध हो जाय ॥ १ ॥ तृष्णा आग अपार, तृष्णा जग भीख मगावे। तृष्णा अत्याचार, तृष्णा पथ ज्ञान भुलावे। तृष्णा करे फजीत, तृष्णा ले कैद करावे। तृष्णा कटावे शीष, तृष्णा तुज नरक दीखावे। मात पिता गुरु सज्जना तृष्णा गिणन एक। ज्ञान सदा ममता वशे प्रगट गुण अनेक ॥ २ ॥ ज्ञान गरीबी गुरु वचन, नरम वचन निर्दोष। एता कभी नहीं छेडिये श्रद्धा शील संतोष ॥ ३ ॥ इतने पर भी इस मायाचारी की विषय तृष्णा न बुझी और शाशन देवी से निराश हो सीमंधरस्वामी को झूटा कागज लिखा। जिसमें श्वेताम्बर, दिगंबर ८४ गच्छ स्थानक वासी, तेरा पंथी, आदि सब ही जैनों को इसने चोर साबित किया है। इस नुगुरे के उस काले कागज को नहीं पढ़ कर जब भंगी की टोकरी में फेंकवा दिया, तो रोता हुआ यह मूंढ बोला कि:—

हे नाथ, कागल नो उत्तर केम नथी थी आयो, हुं हुंडी लखूं छूं कागल का नहीं वांचियोर, मांड्यियो घोर अंधार, हुंडी सिकारो नाथजी न करो देर लगार ॥ १ ॥ मेम्फरना पृ० ३;—

निदान गुरु परपरावार्जित इस नुगुरे कंगाल की सीमंधर स्वामी ने जाली हुंडी भी नहीं स्वीकारी, तब रोकर यह मूर्ख फिर बोला कि, कागल तो मैं लख्योरे हुंडी माहरी रे केम न सिकारी नाथ । कारण पामीर लखूं पेठनेरे जल्दी सिकारोतात ? में पृ० ४ । जैनी साधुओं को अज्ञानी मस्तागादि विशेषण देते हुए इस पेठ में लिखा है कि, चेला चेली करे चोरी तणार लगिख जात न कुल । पुस्तक संचेलाभी डाभं डार मोर । इम इमविगल्योजग शुल ७ में० पृ० ५ । खुद नीच कुलोत्पन्न होकर गुणी जनों की झूठी बदनामी करने वाला ज्ञानसुन्दर को नालायक समझ सीमधर स्वामी ने पेठ भी रद्दी में डलवा दी, तब मूर्ख पर पेठ के नाम से कागज काला करने लगा कि:—

कागलहुंडी पेठने, केम न सीकारी नाथ । हवे पर पेठ सीकारजो । ओत में जगना तात । १ मे पृ० ६ समी० । इस पर पेठ में तपागच्छ के साधू और पन्यासों को परिग्रहधारी व्यभिचारी परप्राणघातक और जिनाज्ञाविराधिक लिखते

र उन्हों की उद्यापन, उपधान, लोचादि क्रियाओं को झूठी
ाई है। और उन्हों के श्रावकों को मिथ्यादृष्टि, कदाग्रही,
था देव द्रव्य भक्षक लिखा है। निदान परपेठ भी बिना
ाहूकारी के इस नगुरे की अस्वीकार हुई। तब इस जैनधर्म
परमशत्रु ने अपने क्रूर हाथों से जैन साधूओं की निंदारूप,
फरनामा लिखा कि–हुंडी पेठ खोवाई गई, परपेठ सीकारी
नाथ। ते कारण मेफर लिखू। जन्दी सीकारो तात ॥५॥
स मेफर को सुनने के लिये इस अधम ने अनेक वाणियों के
रणों में ढोकें दी हाथ जोड़े, परन्तु किसी ने भी इस म्लेच्छ
ी प्रार्थना स्वीकार न की यथा–हूं पण भंघने नमी करी।
ाहुं मननी वात॥ तोपण कोई न सांभले। तूं जाणें जगतात।
१ मे० पृ० ६। इस मेफर में तपागच्छ के आचार्यों के बारे
ं लिखता है कि–पाटीदार पटेलिया, कोई हो छीपा माली
ाट। अग हीना के ही मांजरा। नहीं सोमे हो श्री वीर ने
ाट। ७ हाथी तणा बोजा लेई। नांखे हो खर ऊपर मूल।
ादवी देवे अयोग्य ने। नहीं जुए हो जाति ने कुल १२ लाखो
ावो करता फरे। भज कलदार हो बेठा जपे जाप चरण
्थपावे वेहना। मूर्त्ति हो घरे मंदिर बीच। छवियाँ चाँच रावे
घहू मूली स्वच्छाचाही करे ते नीच। १७ मे० ढा ४ पृ० १८।
वर्त्तमान आनंदसागरजी नेमविजयजी वृद्धमविजयजी
विगेरे आचार्य विद्या का अभिमान तो बहुत ही रखते हैं

परन्तु ज्ञानसुन्दर के आक्षेपों के उत्तर नहीं देते यह कितनी बड़ी भारी कमजोरी है। आचार्य श्री बुद्धिसागरसूरीजी बुटेरायजी आत्मारामजी उपाध्याय श्री वीरविजयजी आदि तपा गच्छीय महान् पुरुषों को नीच लिखना है। यह ज्ञान सु० भा० की कितनी बड़ी भारी नालायकता है। इसको मालूम नहीं कि जैन साधुओं के नीच कर्मोदय नहीं होता। कुरिवाजों को सर्वथा छोड़कर जिनेन्द्र का जाप करने वाली अपवित्र जातियां भी पवित्र हो जाती हैं। चारों ही वर्णों की प्रजा को जैनधर्म पालने का पूर्ण अधिकार है। ऊंच नीचता जैन शास्त्रों में मनुष्यों की आचरण पर ही मानी गई है। शुद्धी द्वारा करकंडू राजा ने हजारों भंगियों को ब्राह्मण किये थे। महर्षि मेतार्य भी जाति के भंगी थे जिन्होंने शुद्ध होकर गृहस्थाश्रम में महाराज श्रेणिक और बड़े २ कोटीश्वर महाजनों की अनेक कन्याएं परणी थीं। चक्रवर्ती सभी जैनी राजे महाराजे अनार्य और म्लेच्छों की हजारों कन्याओं के साथ लग्न करते थे और उन्हीं की सभी सन्तान शुद्ध क्षत्रिय कहाती थी। जिनके चरणों में बड़े २ ब्राह्मण लोग भी अपना मस्तक रगड़ते थे, वह हरकेशीबल मुनि कुत्ते को भी पकाकर खाजाने वाली जाति में उत्पन्न हुए थे। जैन साधुओं से शुद्ध होकर हरीबल माच्छी ने अनेक क्षत्रिय राज कन्याओं का पाणीग्रह किया था। भगवान् श्री महावीर स्वामी के १५६००० श्रावकों में मुख्य

आणंद नामक श्रावक शूद्र जाति में उत्पन्न हुआ था। शुद्धी द्वारा हमारे जैनाचार्यों ने सैकड़ों गामों के गांव जिन्हों में छत्तीसों ही पौन आगई जैनी बनाये थे। मूर्ख ज्ञान सुन्दर को मालूम नहीं कि-मनुष्यों में जाति व्यवहार केवल कल्पनामात्र ही है यथा—

मनुष्याणां न रक्तस्य, न मांसस्य न चाहिस्थनः आत्मस्य नात्मनो जाति, र्व्यवहारोहि कल्पितः ॥ १ ॥ ज्ञान मेवा भये द्विद्वान् जातिं दोषं विनाशयेत् जाति भेद, विनाशेन, सर्व दुःख विनाशनम् ॥ २ ॥—

जैन साधुओं की जाति हीलना करने वाला महामृषा वादी ज्ञानसुन्दर मनो कल्पना से अपने कोठ पलदेपंवार के वंश में लिखता है, परन्तु जरा आंख खोल कर देखें अन्य विद्वान् क्या लिखते हैं, श्रीरत्नप्रभसूरि ने सब तरह की जातियों के मनुष्यों को अपने धर्म में कर लिये थे। जो चीराफाड़ी का काम करने वाले वैद्य नाई ओसवाल हो गये थे वे वैद्य कहाये, जाति अन्वेषण भा० १ पृ० १३५। अगर यह बात सच है तो कहना होगा कि खुद महा शूद्र होने पर भी अन्य मुनियों की झूठी-बदनामी करने वाले ज्ञान शूद्र का जातिमद करना गलत है ज्ञानसुन्दर भाई ने जितना परिश्रम स्वपक्ष को नष्ट करने के लिये किया है उतना ही अगर पर पक्ष के लिये किया होता तो

जैन धर्म के हक में कुछ ठीक होता। परन्तु करें कैसे उतना ज्ञान हो तब न। आगे तपागच्छी पंन्यास और संवेगीयों को लिखता कि–जिनागम मांही से नहीं, पंन्यासोना नाम। कहेवाय संवेगी नामना। नहीं संवेग नो रंग ॥ समिति गुप्ति जाने नहीं। सावद्य निर्वद्य नहीं होय भान। दोष जाणे नहीं आहार ना। नहीं भाषानुं ज्ञान। १। हृष्ट पुष्ट साधु बन्या। माल खाई बण्या मस्तान। कूडा योग वहन करे। कलियुगी मांडयुं तोफान। ७। पूण्योदय साधु थया। आधाकर्मी खाई करे पुण्य नाश। पाप पुरा उदय आवियां। साधु होवे पछे पंन्यास। ८ ॥ अदरनो रहस्य हवे सुणो। थई पंन्यास मांडे उपधान। माल पाणी नाणुं मिले। महीला भली करे सन्मान। १०। मे० टा० ५ पृ० २०। तपागच्छ की योग विधि को कूंठी ठहराते हुए आगे ज्ञान सुंदरजी लिखते हैं कि–कल्पित छे विधि योगनी। भोला पडीया भर्म। धर्म आज्ञा वीतरागनी। आज्ञा बहार अधर्म। २। कूडा योग वहन करे। आधा कर्मी खावे पदवी काज। अभी ताथ अभीमानिया। पदवी लेतां आवे नहीं लाज। ६। रुलै अनंत संसारमां। केम काढे बीजाने तारा। रामसनेही साधुना भोजन बने घर घर तेम। कम नहीं योग वहनमां। बनडा बैठों घदोले जेम ॥ १ ॥ पंचक्खाण करे आंबिलतणा। दहीतणा करबा खाई जाय। मीठो मरचों हींग जीरो। दश बीस भोजन बनवाय ॥ १५ ॥ नीवी तो जाणे नामनी।

कलाकंद खीरने दूध पाक । तलयोगल्यों मपघणो । बदाम चिरंजी मेवादाख ॥ १६ ॥ पंचक्खाण करें विगय तण । विगय खावे हो लागे मोटो पाप । महामोहनीय कर्म बांधता । समवायांगे हो भाख्यो आप ॥ १७ ॥ साधवियों आने एकली । लेवे योग वहन नाम । काल विकाल गणे नहीं । कोण जाणे पंन्यासोना काम ॥ २० ॥ योग करावे नहीं अन्यने । फ़गवर्ती पहली करे कोल । एटला पुस्तक आदि तणा । रखावे पहली रोकडा माल ॥ २६ ॥ मे० डा० ६ ॥ आत्मार्थी जिज्ञासुओं को तपागच्छ म तहकीकात करना चाहिए कि ज्ञानसुंदरजी का लिखना कहां तक सत्य है । यदि इसके लेखानुसार ही उन्हों का आचार विचार है, तब तो कहना होगा कि, तपागच्छ की समाचारी जैनागमों से बिलकुल विपरीत हैं । आगे लिखता है कि—उपधान करावता पहेलां । पेसा होलेवे ज्ञान ने नाम । पेढी जमाई मालणों परे । कोई काढ्यो हो पैदाषनो काम ॥ २ ॥ आरंभ करावे नवा नवा । भोजन कारण हो देवे आदेश । माल ऊडावी करे भोजने । ओंडो मिल्यो गुजरातनो देश । ५ । नाम लेवे नीवी तणो । आहार तेहनों जाणो जगमाण । बदाम तणों हलवो बणे । यारी हो कलाकंद पिच्छाणं । ७ लाडू पेंडा बरफी बणे । दूध पाक हो नहीं रहे दूर । घेवरां ने चूडला बणे । जुदा जुदा शाक हो दाडा भरपूर । ८ । तुरखी मरी मग पावरी । साधुजी हो उडावे माल । पर्नन्द पूर्ण जाणिये ।

पंन्यामें हो विच्छावी जाल । ६ । अमुक बाई ए दश दीया । तुंतो मोटा घरनी वेन । सौ केवे सो आपसो । धीरें धीरें हो हो बोले मधुरा वेण ॥ ११ ॥ रांडी रांडो ठगवा भणी । भला जाग्या हो धोले दिन चोर । ज्ञान नामे वन भेलो करे । पापो दंय हो पके चोर में मोर ॥ १२ ॥ मेझरना० ढा० ७ पृ० २१ । इस पुस्तक में ज्ञानसुंदरजी ने तपागच्छ के वर्त्तमान मंघ की खूब ही पोल खोली है । किसी विद्वान् मुनि ने आज दिन तक कुछ भी उत्तर नहीं दिया । इसीसे पाया जाता है कि—अवश्य कुछ दाल में काला है । खेद है उन महानुभावों की बुद्धी पर जो कि अतिशय शुद्ध खरतर समाचारी को तो छोड़ते हैं । और उन्मार्गीयों की कल्पित समाचारी का पक्षपाती बन अपनी शुद्ध गुरु परंपरा व जैनधर्म से पतित होते जाते हैं । जैन समाज में एक खरतर गच्छ की ही समाचारी जैन सूत्रानुकूल और अतिशय शुद्ध है कि, जिसको दोषित बताकर, कोई नहीं काट सकता । इस गच्छ में योग वहन करने वाले मुनि को, फक्त उपवास, आचाम्ल, और निर्वि कृति (नीवी) नामक तप करना होता है । आयंबिल तप में सिर्फ एक जाति का रुक्ष धान्य और उष्णोदक, इन २ द्रव्यों के सिवाय तीसरी कोई चीज नहीं खाई जाती । नीवी में ५ विगय और ज्ञानसुंदर लिखित सब चीजों की कौन कहे, यंत्र द्वारा जिसमें से कुछ चिकटास निकलती हो, वह चीज भी नहीं खाई जाती । ज्ञान

सुदर का मेझर, तपागच्छ के ही साधुओं पर लागू पड़ता है। कारण–पंन्यास पद अन्य गच्छ में नहीं, और गुजरात में प्राय उन्हीं का प्रचार है। उन्हीं के लिये आगे ज्ञानसुदरजी लिखते, हैं कि—पोल तखा चेला करे। देशावे ने रोकड़ा दाम। माल खाये मस्तानिया। अनाचार सेवे ठामो ठाम। ६। मेज० ढा० ८। धिक्कार ? ज्ञा० तपागच्छ के सभी साधुओं को व्यभिचारी समझता है। आगे तपागच्छ के साधुओं को बिलकुल नही। बताते हुए ज्ञानसुंदरजी लिखते हैं कि-पहने पहारे चा। दूध नी॥ बीजे पहोरे उड़ावे माल। त्रीजो पहोर निद्रा तणो। चोथे पहोरे वली चोखाने दाल। १७॥ मे० ढा० ६। साधू लेवो कल्पे नहीं? नहीं कल्प हो मोड़ा माजी खार। शाशन थी। श्रद्धा उतरे। दुर्लभ बोधी अनन्त संसार। १६। गृहस्थनों मोटो घर हुवे। तो साधु लाव सेर पांच। मोटा साधु चोमासो करे। साधु लावे मण पांच।२०॥ ढूढक वापते मावग। मंवेगी पण्या साधु लार। आपस में निंदा करे। केनों कहूं सुद्धाचार। २३। ढा० ११। हमने तपागच्छ के केही बड़े २ साधू और आचार्यो को देखा परन्तुं पांच ? मण साबुन किसी के पास नहीं देखा गया। महामृषावादी ज्ञानसुन्दर को असत्य लिखते लज्जा न आई। झूठ की भी कुछ हद होती है। साधु सोढा मोओ देशी निर्जीव वस्तु है। जीवदया निमित्त मलीन वस्त्र को प्रक्षालनार्थ गृहस्थ के घर से लेने साधु जरुरत होने पर

निर्वाण पाठमां । देवी पामे मागे निर्वाण । भरतक्षेत्र ना लोकनी । दशा बगड़ी हो नहीं रह्यो ज्ञान । ७ अजितशांतिना अतमां । गाथा मिलावी सात । उदेपुरमा लघुशांतिने । सुरु करी नहीं छानु नाथ १५ नानु प्रतिक्रमणे गुपचुप करे । मोटो करे परिखदा बीच । अग्नि रुमां छुपे नहीं । मायाचारी ज्ञान कहे नीच । १६ । वंदितु सूत्र मिद्ध दंड के । जयवीयराय गाथा दीधी मेल । न्यूनाधिक मिथ्यात्वछे । शुं लिखु आभरतनाखेल । १७ । मन कल्पित आचरण करी । लखी पोताने हाथ । ते आज्ञामध्ये केम हुए । कोने कहू माहरा कृपानाथ ॥ २५ में ढा० २२ ॥ एक दूसरे की समाचारी को कल्पित और झूठी कह कर आपस में विरोध बढ़ाने वाले अदूरदृष्टि ज्ञानसुन्दर जैसे मूर्ख नेताओं ने ही सत्य जैन धर्म को रसातल में पहुचाया है। जो धर्म सब धर्मों का राजा था, प्राणी मात्र जिसको स्वीकार करने में अपना अहोभाग्य समझते थे, आज वही पवित्र जैनधर्म पददलित हो रहा है । कहीं इन्हों पर टैक्स लगता है। कहीं इन्हों का तीर्थ खोसा जाता है । कहीं इन्हों की मूर्त्तिया छीनी जाती हैं। कहीं इन्हों का बहिष्कार होता है। इन सबका अगर मूल कारण देखा जाय तो आपस की फूट के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । मूर्ख ज्ञानसुन्दर को मालूम नहीं कि—मूल बातों को छोड कर जैन शास्त्रों में जमाने के अनुसार विशेष क्रियाओं में फेरफार होता रहता है। हमारे

जैनाचार्यों को अख्तियार है कि समयानुसार वे जैन शास्त्रों में घटा बढ़ी कर सकें। सर्वधर्मानुकूल आधुनिक जैनाचार्यों के वचन भी प्रमाण कोटी में दाखिल होकर जैनी मात्र को परम मान्य हैं और ज्ञानसुन्दर के समान विरोध बढाने वाले वचन चाहे १४ पूर्वधर के भी क्यों न हों, मनुष्य मात्र को अमान्य है। आगे तपागच्छ के सभी साधुओं को पाचों ही महाव्रतों से खारिज साबित करते हुए ज्ञानसुन्दरजी लिखते हैं कि—

साधू कारण तंघू रहै। तबू कारणे गाडीने ऊठ। जीन-हणाने छे कायना। पूछें थी वली बोले झूठ १३ आज्ञाचौरी वीतरागनी। महिला साथे भागे शीलनी बाड। ममता तो खूल्ली दीसे। पाचमों व्रत इम दीधो तोड। १४ मे ढा. २३। धिक्कार २अपने भाइयों को धर्मभ्रष्ट बताकर मूर्ख ज्ञानसुन्दर स्वधर्मोन्नति का प्रयत्न कैसे करता है, मानो कोई पत्ती अपनी पाखों को तोडकर आस्मान में उड़ना चाहता हो। वर्तमान तपा जैन शास्त्रों मे चाहे लाख दर्जे भी पतित है, लेकिन उन्हों को सर्वथा रद्दी कर अपनी उन्नति कोई गच्छ नहीं पा सकता। आगे समस्त जैनियों को-संघ-निकालना-तीर्थयात्रा देवगुरु दर्शन आदि धार्मिक क्रियायों को उत्थापते हुए ज्ञा० लिखते हैं कि–गुरु गौतम करी जातरा। अष्टापदे एकला आप। ते वखते संघ नहीं कह्यो। पाम स्थाए पाछल दीधो स्थाप ॥२१॥ कई तो धनना लोभिया। केई छुओ पुत्र ने काज केई रोगादी काढवा। यात्रा करवा मले समाज'॥ २४॥ नर्थिक

ठगे वधा जगत ने । नहीं मुके वीतराग देव । जैनी संघ कढावता । ढूंढक जीव वदन काज । तेरापंथी जावे पूज खने । आडंवरथी इम बगड़ी समाज ॥ ३३ ॥ यात्रा कारण जनम ले, नहीं जैन धर्म नो रंग । जो यात्रा तारक कहें । दूर मुक्यो संवेग नो संग ॥ ३५ ॥ मै० ढा० ॥ २३ ॥ ममत्वना मंदिर वन्या । अवदनीक अगम कहें आप । अवदनी कनें वांदतां । आज्ञा भांगे लागे मोटो पाप ॥ १ ॥ म० ढा० २४ अफसोस ? म्लछे ज्ञानसुन्दर ने जैन धर्म की जड़पर यहभारी कुठारा घात किया है । इम नुगरे को जैन शास्त्रों में अभी तक नहीं दीखा कि गौतमस्वामी से भी क्रोडों वर्ष पहले भरतादिकोने अनेक संघ निकाले है । इह लोग के स्वार्थ के लिये कोई जैनी तीर्थयात्रा नहीं करते । फक्त मुक्ति के लिये ही करते हैं । अगर कोई भद्रीक मनुष्य इस लोक के सुखार्थ अन्य मिथ्यात्वियों के तीर्थों में न भटक कर जिनेन्द्र भगवान की कल्याण भूमि स्पर्श की और वहां रह कर अपना दु ख मिटाने के लिये दर्शन, पूजन, धर्म, नियम, दान, पुन्य करे तो उसमें कोई भी प्रकार का दोष नहीं है । उसमें लोकोत्तर मिथ्यात्व कहने वाला ज्ञानसुन्दर खुद महामिथ्यादृष्टी है । लोकोत्तर मिथ्यात्व होता है अन्यतीर्थी परिगृहीत जिन चैत्यो का वंदन पूजन करने पर भक्तिमान श्रद्धालू जन बड़े आडंवर से अपने २ गुरुओं को वंदन करने के लिये प्रतिवर्ष जाते है और

धिग् जातीय ज्ञानसुन्दर को व्यभिचारी समझ के कोई नहीं आता। बस इसी कारण से इसने ३२ वीं कडी गाई है। वर्त्तमान समय के जैन मंदिरों को अवंदनीक लिख कर ज्ञा० महा मूढता जाहिर की है। अवंदनीक मंदिर वह माना गया है कि चारित्र छोड़ कर किसी साधु ने अपनी आजिविका निमित्त बनाया हो॥ आगे २२ समुदाय वालों को लिखता है कि, दिन भर मोढों बाजवों। कुलिंग हो लागे मिथ्यात्व। महा मच टाले नहीं। नहीं टाले कोई कुल ने जात॥ १३॥ सुओ सुतक गिणे नहीं। न‹ गिणे नारी ऋतुधर्म। लोक विरुद्ध आचरण करे। केही करे छाना कुकर्म॥ २७॥ मोटा दोष साधु सेवता। गुप चूप घर माहे ढाक। लेणा-देणा समाचारनी गृहस्था नामें चलावे डाक॥ २८॥ पूज पूज पग-घर। गामना नीची राखे दृष्ट। विहार कर दश कोसनो। मायाचारी ज्ञान कहें अष्ट २९ मे० ढा० २५॥

आगे तेरहपंथी भाइयों के वास्ते लिखता है कि-प्रतिमा ने पत्थर कहें। वीर प्रभू गया चूक। पाप कहे दया दानमा। अज्ञानी बेवकूफ। २। पंथी साधु ने फांसी देवे। पथाणियाँ थी सेवे अत्याचार बलती गायो एन्द्रियो ने। बचावता कहें पाप अपार ५ पंथी साधू छोडिने। कोई देवे बीजा न दान। पुण्य कहे ससारमा। जुओदुष्टो नों अज्ञान।७। सतियाँ लावे

गोचरी । जिमाडे गृहस्थी–परें साध । भचा भच गिणे नहीं। पुदगला नंदी पडीया जीमने–स्वाद। १४ पडदे बैठा पूजजी। साध्वीयों रहे पडदा बीच । भोजन नत्र नवी जातना । अघोर करे आंखों मीच । १६ शुं लखूं कर्म विटंबना । शुं लखू पंथ-णियों का काम। दुराचार वध्यो घणों । नहीं छानों जाणे आत्मराम ॥ १६ ॥ खसोटी करेप्ररूपणा निहद कह्या आगम वाद। लिंगपण जूदो जैन थी । नहीं गृहस्थी नहीं साध। १९ ॥ मे० ढा० २६ ॥

पाठक देखिये ज्ञानसुन्दर भाई का जैनी मात्र पर कितना बड़ा भारी द्वेष है इसको मालूम नहीं कि—जमाना संगठन का है। ढूंढिये तेरहपंथी भाई चाहे अपनी भूल से वीतराग भगवान् की मूर्त्ति को पत्थर कहें। दोप सेवें तो भी उन्हों का बायकाट करके हम जैनधर्म की उन्नति कभी नहीं कर सकते। अपेक्षा कृत भेदों से सब ही मत सत्य है।

जैनियों में यदि परस्पर आपस का विरोध न होता, निस्संदेह आज की परस्पर सुधरी हुई सभी प्रजा जैन हो जाती। एक दूसरे की बदनामी करने वाले अपारदर्शी मूर्ख वणियों ने ही क्षत्रियों चित सर्वोत्कृष्ट सात्विक जैन धर्म का भीषण ह्रास किया है। आज जब कि संसार की सब जातियों उन्नति कर रही है और साथ ही उनकी जन संख्या भी बड़ी तेजी के साथ बढ़

रही है। वहा हमारे जैनियों का भीषण पतन हो रहा है। पहले जैनसमाज एक झण्डे के नीचे और सारे भारतवर्ष में फैला हुआ था। होते २ एक पंथ में दो विभाग हुए, श्वेताम्बर और दिगम्बर। भद्रबाहू से बहुत वर्षों तक ये दो विभाग रहे। जब एक चीज़ के दो टुकड़े हो जाते हैं, तब ही से वह वस्तु बेकार होने लगती है। जब हमारी जैन समाज के दो विभाग हो गये, तो इनमें विरोध की निशानी, मैं और तू, चलने लगी। १ श्वे० कहते थे हम सच्चे हैं २ दि० कहते थे हम। वास्तव में दोनों सच्चे थे। इस प्रकार विरोध बढ़ने पर, यदि एक संप्रदाय पर कोई आपत्ति आ पड़ती थी तो दूसरा कह देता था कि, उनपर हैं, हम पर नहीं। जब एक थे तो किसी अन्य धर्म वाले का साहस नहीं होता था कि हम पर हाथ डाले। पर जब आपस में ही विरोध हो गया तो, अन्य धर्म वाले जैनों को दबाने लगे। बहुत से जैनी दूसरे धर्मों में चले गये।

ज्ञानसुन्दर भाई आचार्य बुद्धीसागरसूरी कृत, जैनधर्मनी प्राचीन अने अर्वाचीन स्थिति, नामक पुस्तक मंगा कर अच्छी तरह से देखें। जब तक दो ही विभाग थे तब तक भी खैर थी लेकिन दो से चार और चार से छः याने विभाग में से भी विभाग होते ही गये और विरोध की निशानी बढ़ती ही गयी। जब तक दो ही विभाग थे तब तक जैनों की इतनी सख्या न घटी थी जितनी स्थानकवासी तेरापंथी आदि विभाग में विभाग हो जाने से घट रही है।

उस समय जैनमत को मानने वाला सारा भारतवर्ष था। वहां आज केवल ११ लाख के करीब जैनी रह गये हैं। इतना भीषण ह्रास आज तक किसी जाति को नहीं हुआ होगा, गत तीन सौ वर्षों में तो बहुत ही संख्या घटी है। अकबर के जमाने में हमारे धर्म वालों की सं० ३॥ क्रोड़ थी आज ११॥ लाख है शोक महाशोक इन हालतों से तो यही प्रगट होता है कि जैनियों का अब अंत होने को है। क्योंकि न विरोध और झगड़े कम करके जैन जाति एक होगी और न इसका अंत रुकेगा। जो वीतराग धर्म था वह आज रागद्वेष का घर हो रहा है। विधर्मियों को जैन बनाने में ही जिस शक्ति को पूर्ण तौर से लगाना चाहिये था। आज वही समस्त शक्ति दूसरे फिरके को सर्वथा नष्ट कर देने में लगाई जाती है।

"बारंबार इन सुधरे हुए जमानों का नाम ले ले कर ज्ञानसुन्दर भाई कागले के समान का कां पुकारता है। लेकिन मैं कहता हूं कि उसको वर्त्तमान जमाने की गंध भी मालूम नहीं है। अगर उसको समय का ज्ञान होता तो न वह बदनामी लेता और न कभी अपने भाइयों का पड़दा उघारता। सुधार तभी संभव है जब कि सुधार का बीड़ा चबाने वाला कुछ करके दिखावे। खुद विषय सेवन करते हुए भी ज्ञानसुन्दर अपने को पार्श्वनाथ स्वामी की परम्परा में शुद्ध साधू मान कर पुजाता है। और महावीर की परंपरा गत सब ही जैन फिरकों

के लिये लिखता है कि-पासत्था कुदर्शनी, कुलिंगी भ्रष्टाचार गुरु जाणी वंदन करे। रुले अनत संसार। १। में० पृ० ८७। ढा० २८ आगे वर्त्तमान जैन श्रावकों के लिये भी लिखते हैं कि-जेवी दशा साधुओं तणी। तेवी श्रावकोंनी जाण। मैला हृदय माया घणी मचमा माडी खेंचाताण। ३। भक्ताभक्त अगेगता। होटलों में पीवे चाहने दूध। आचार डूब्यो जैन नो। मोह छाक्या नहीं रही शुद्ध। ६। मोटुं देखी टीलुं करे। जूठी साची कर आपणी स्थाप। पक्ष करे पासत्थातणो। देवे शीथिलने साहाज। ८। स्वामीवात्सल्य नामथी माल पिणी उडावे खूब। स्नान करे भागां पीवे। चौथो व्रत भांग बेवकूफ। ११ रोमनी करे रातना, मंदिर मालेवे भक्तिनु नाम। अणगिणता त्रसजीवना। प्राण जाये जु ओवणी कोंना काम में० ढा० २६ आदि इस प्रकार की अनेक ढालों में और दुहों में इस जमाने के समस्त जैन गृहस्थों को भी ज्ञानसुन्दरजी धर्मभ्रष्ट बताते हैं। आणंदजी कल्याणजी आदि नहीं २ संस्थाओं की पोल खोला गई है। परन्तु एक संस्था का दोष सब ही संघ पर मढ दिया, यह ज्ञा० की नालायकता है। जिन गृहस्थों की रोटी खाता है और उन्हीं की बदनामी गाता है यह ज्ञा० निमकहरामी पण नहीं तो और क्या है। हमारी क्षत्रिय जाति को कोटिश धन्यवाद देना चाहिये कि-एक बार जिसकी रोटी खाली तो उसके लिये अपना प्राण

तर्क देने को सदा तैयार रहते हैं। अस्तु सी मंधर स्वामी ने इस नमकहरामी के प्रलाप रूप मेम्बर को भी नामंजूर फर्मा कर भंगी की टोकरी में दया पलवा दी और इसका योग्य उत्तर देने के लिये शासनदेव की ओर इसारा किया। शासन देव ने एक संदेश जैन श्रेयस्कर मंडल के हृदय में और एक लेख जैन पत्र में दिया। उन्हों का सार यही था कि–तुम कौन हो। जैन दीक्षा किस गुरु के पास ली। तुम्हारा ज्ञानसुन्दर नाम किसने दिया, जैन परम्परा गत अपने गुरु का नाम बताओ। बिना गुरु के तस्करों की हुंडी आदि स्वीकारी नहीं जा सकती। यह पढ़ कर ज्ञानसुन्दर निराश हुआ और मंडल को अपना सत्य परिचय इस प्रकार लिखा—

काल अनंती हूं भम्यो। भव मण्डल ना बीच। मुझ सरीखो पापी नहीं। नीच नीच थी नीच। २। चाल अनादीनि मुझतणी। लखूं संक्षेपे वात। बालपणो खोयो खेलीने। तरुण वय घणा विषय कषाय। शुं लखूं कर्म विटंबना। झूठी ही कोई जाल रचाय। ७। जीव हिंसा झूठो बोलू हू। चौरी थी लीधो परमाल। रमणी रूपे मोहियो। परिग्रह लेवा हू उजमाल। ८। क्रोधादिक मिथ्यात्वना। सेव्या अढारे पाप। कर्मादान न छोडियो बनी बैठो हुं पापनों बाप॥ ९॥ दुःख गर्भित वैराग थी। घर छोड्यो पण नहीं छोड्यो काम। स्थान कवासी में में दीक्षा लीधी। पूज श्रीलालजी नाम॥१०॥

दीक्षा लेई पूज्य श्री । केई वाच्या अंगोपांग, । निश्चय इनो जाणीने । छोड्यो ढूंढक मंग ॥ २१॥ दर्शन आराधे चारण विराधना । चारण आराधे दर्शन विराधक होय । त्रीजो बन्ने आराधतो । चौथो भागो बन्न विराधक जोय । हमणा महाराजेवा वालमा भागो चौथो पीछाण ॥२५॥ चोर करे चौरियों राजा प्रसेन चोजे सांच मे० ढा० ३० ॥ धिक्कार २ पांच आश्रव और १८ पापों को सेवन करने पर भी हमारे कतिपय मूर्ख जैनी भाई ज्ञानसुन्दर को अपना गुरु मानते हैं, और प्रातः स्मरणीय तथा पूज्यपाद आदि विशेषण देकर जैनधर्म की हांसी कराते हैं । इसमें ज्ञानसुन्दर का कोई कसूर नहीं, फक्त हमारे मारवाड़ी भाइयों की ही मूर्खता है । यदि येही अज्ञान दशा रही तो कोई दिन भाड और बहुरुपीये भी जैन साधू तरीके पूजे जायेंगे। ज्ञानसुदर ने भी समझ लिया कि फलोदी में अब मेरी पोल न खुलेगी । जशवंतसराय में पड़दा बंधवा कर व्यभिचार का अड्डा जमाया और मेम्बर नामे का प्रचार बंध करके औरतों से प्रेम प्रचार शुरू किया । सब से पहिले तो कूप बुहारने के बहाने पिछली रात को एक सेवगण आने लगी । होते २ प्रमोदश्री नामक निर्दोषी साध्वी पर भी ज्ञानसुन्दर का मन ललचाया । अपनी विषय वासना तृप्त करने के लिये यह महापापी उस विचारी साध्वी को शास्त्रों की बातें शिखाने के नाम से बुला २ कर हंसी

ठट्ठा करने लगा, और प्रेम का झरणा शीर्षक निरलज्ज पत्र लिख कर दिया। जो कि-धी यु-प्रे-कं-टंकशाल-अहमदाबाद में जैन कुल कलंक ज्ञानसुन्दर (गयवरचद) के भ्रष्टाचारों का नमूना नाम से लाभचद मंत्री जैन समस्त श्री संघ सभा फलोदी ने छपवा कर प्रकाशित किया है।

निर्लज्ज शब्दों से भरा हुआ इस म्लेच्छ का भ्रष्ट पत्र को अपनी पवित्र पुस्तक में लेना मै नहीं चाहता था तथापि श्रावकों के अनुरोध से इस धर्मघातक का लिखा हुआ प्रेम का झरणा नामक असभ्य लेख ज्यों का त्यों यहां दिखाया जाता है यथा—

प्रेम का झरना।

क्या आपके वहा कुछ बातें हुई है जैवत श्रीजी क्या साध्वी के अभाव से आया था, या आपके लिये पहरादार। हे सुन्दर स्तनों के विभूषित हृदयवाली! आपके चंद्र विकाशित वदन और कोमल कपोल पर दमकती कामदेव की छटा और नेत्रों के बाण से मेरे हृदय को भेद दिया है। कामदेव मुझे इस कदर का सताता है कि- जिससे न खाना न निद्रा न ध्यान न परमेश्वर अर्थात् बेहोस होगया हूं। हे प्राणेश्वरी! क्या प्रीति की रीति ऐसी ही होती है कि- प्यासे को महार्णव दिखला के एक बूंद तक भी नहीं पिलाना।

क्या आपके लिये यह बात उचित है । हे मृगनयनी ! मैंने बहुत सी पुरुषाभिलाषिणियों को देखी है, और उन्हीं का अन्तःकरण भी खरीद कर लिया था । परन्तु मेरी तरफ से एक बूंद ता दया।हस्तस्पर्शन का दान नहीं दिया था । परन्तु हे कचनागेरी के दोनों शंखों को धारण करने वाली ! तेरी विद्वत्ता, चातुर्यता, सौंदर्यता, और इशारे मात्र में सपूर्ण ज्ञान को धारण करना इत्यादि गुणों से मुग्ध हो के मेरा अन्तःकरण मैंने तेरे श्यामवन के मनोहर मन्दिर में समर्पण किया है।

अगर आपके दिल में कुछ रहमता होतो 'मेरे देव की प्रतिष्ठा' आपके उन्हीं श्यामवन के मन्दिर में करादो' । और जमक, शमक, दोनों वज्र के पहाड़ों की यात्रा उदारता से प्रेम पूर्वक करादो और बदले में आप भी हमारे 'शिवनरायण' को स्पर्श कर अपने कर कमलों को पवित्र बना लो। आपका प्रेम अब प्रतिदिन बढ़ताही जाता है । एक घड़ी मात्र भी अलग रहना नहीं चाहता हू । अगर तुम लोग हमको ऐसा ही छोड़ जाओगी तो, हमारे हृदय में सहस्र वन से भी अधिक दावानल लग जायेगा और एक प्रेमी की हत्या का दोष तेरे शिर पर रहेगा । क्या प्राण प्यारी ! मेरे को इतना दुःख होता है तो तेरे को इससे अधिक न होता होगा ? नहीं नहीं नहीं अवश्य होता ही होगा । हे मधुर भाषिणी ! कोकिल के सदृश्य तेरा सुस्वर कंठ से मेरे हृदय में

वेर वेर दावानल उत्पन्न होता है। यातो मेरी इस इच्छा को पूर्ण कर दो या आपका यह वाला जोवन और कोमल कपोल, सुन्दर नेत्रों को घूंघट में छिपालो। क्यों मेरे को तरसा रही हो ? क्या तेरे हृदय में दया नहींहै, तेरा शैतान जोवन से तृप्त करादो । अपना प्रेम का वार्त्तालाप थोकड़ा के नाम से करते रहना । आने जाने के लिये एक टेम ऐसी निकालो कि—कोई लड़की को साथ में लेके सुवह या शाम को कोई दवाई का कारण पाके आओ । इस पत्र का उत्तर यहा पर ही थोकड़ा अल्पा वहुत के नाम से सूत्र का पाना देखते जाओ और मनमानी वहार करते जाओ । खूब खुल्ले दिल से प्रेम युक्त पत्र लिखो । जहा तक संयोग न मिले, वहां तक, पत्र द्वारा ही दिल को संतोष करेंगे । विद्वानों का प्रेम चित्त को आनन्द के लिये ही होता है । खास ध्यान में रक्खो कि अगर एक दफे खुल्ले दिल से वार्त्तालाप हुए वगैर ही चले गये तो, मेरे को वड़ा भारी दुःख होगा । देखिये प्यारी पूर्व का कैसा संस्कार है, कि प्रीति से मुझे कितना अनुराग हुआ है ? अव आपका दिल कैसा है, वह आपके कर कमलों से लिख के मुझे देदो, तव ही मेरे जीवको तसल्ली आवेगी । यह पत्र भी पढ़ के एक सूत्र के पत्र में देखो । पाठ पूछने का कारण से मुझे देदो, ताके फाड़ के काम लगादें । दो दिन में दो पत्र लिख के फाड़ दिये हैं । अगर आप वहां से पन्ने लिख

के लाओ तो, बड़े ही जाबते के साथ लाना। क्योंकि कहीं पर गिर न जाये। मैंने बहुत सी स्त्रियां दोनों अवस्थाओं में देखी है। परन्तु आपका प्रेम और चातुर्य कुछ और ही बजे का है। अर्थात् दूसरियों में यह सद्गुण देखने में नहीं आया है। आपकी मैं कहां तक तारीफ लिखूं। पत्र जल्दी लिखो। अगर रजिस्टर में थोकड़ों के नाम से पत्र लिखोगी, तो भी मैं वह कागद, काटलूंगा खुशी से लिखो॥

धिक्कार २ हमारे पाठकों को अब तो निस्सदेह मालूम होगया होगा कि—ज्ञानसुन्दर जाति का हिन्दू नहीं है। अगर यह ओसवाल वंद का अंश होता तो अपनी भाणजी साध्वी को ऐसा अधम आमन्त्रण कभी न लिखता। साधू की कौन, कहें, पापी से पापी गृहस्थ भी ऐसा निर्लज्ज पत्र लिख कर किसी औरत को नहीं दे सकता। ज्ञानसुन्दर जैसे धर्म विधातक अनार्य वंशधरों ने ही हमारे जैन धर्म का महत्व घटाया है। एक जैन ही क्या किसी भी धर्म का महत्व उसके संपादकों, संचालकों, और सदस्यों पर होता है। जिस समाज के नेता, जितने ही अधिक विवेकशील, सहिष्णु, त्यागी, धर्मभीरू, तथा समाज के हित के लिये मर मिटने वाले होंगे। वह समाज उतनी ही अधिक आदर्श और उन्नत होगी। क्योंकि व्यक्तियों से ही समष्टी का अनुमान लगाया जाता है। बटलोई का एक चांवल देख कर ही उसके पकने न पकने का निश्चय किया जाता है।

छोटी के आधीन है। निदान जैसलमेर से मेरा भी आना फलोदी हुआ और ज्ञानसुन्दर के सर्व अत्याचारों की हकीकत कह दीपचन्दजी गुलेच्छा ने प्रेम का झरणा लाकर मुझ को दिया। चिरपरिचित होने के कारण ज्ञानसुन्दर के हस्ताक्षर मैने अच्छी तरह से पहिचान लिये, और एक पत्र लिखकर एक यती द्वारा इत्तला दी, तब उसी दम आकर ज्ञानसुन्दर मेरे पैरों में पड़ा, और हाथ जोड कर गिड़गड़ाता हुआ बोला कि—बापजी अब मेरा जीना आपके हाथ है। अगर आप मेरा यह पाप प्रगट कर दोगे तो निश्चय में जहर खा कर मर ही जाऊंगा। मैने कहा साधु के वेश में रह कर तुमने यह बड़ा भारी जुल्म किया है, इतने दिन तो फक्त लोगों के मुख से ही तुम्हारे व्यभिचारों की बातें सुनता था, अब मैंने नेत्रों से देख लिया है। तुम मेरे भक्त हो इसीलिये अब मैं तुम्हारे हित के लिये कहता हूं कि—या तो तुम किसी विद्वान् साधू के पास जाकर विधी से दीक्षा लो या साधू का बाना छोड़ अपनी योग्यतानुसार धर्माराधन करो, अन्यथा तुम्हारे हक में अच्छा न होगा, इत्यादि हकीगत बहुत विस्तार से फिर कभी लिखूंगा।

निदान पाप का घड़ा फूटा और फलोदी के समस्त श्री संघने पूर्ण तहकीकात के बाद इसको धर्मभ्रष्ट जानकर जैन श्री संघ से बाहर निकाला। फलोदी समस्त श्री संघ की तरफ से

ज्ञानसुन्दर के बहिष्कार की घोषणा-जो लाभचन्द मत्री जैन समस्त श्री संघ सभा फलोदी से छप कर प्रगट हुई थी। उसमें लिखा है कि-सकल जैनसमाज को विदित हो कि ज्ञानसुदर नाम मात्र का जैन वेषधारी साधु है जो श्रद्धा और चारित्र इन दोनो से पतित ठहर चुका है। इसलिये फलोदी का समस्त श्री संघ, ज्ञानसुन्दर के बहिस्कार की घोषणा के ठहराव को मंजूर करता है। और आशा रखता है कि— भारतवर्षीं समस्त जैनसमाज इस ठहराव को समर्थन करके श्री जैन शासन के हित में सहायक होंगे। हस्ताक्षर—छोगमल गुलेच्छा, छोगमल कोचर, चपालाल बैद. जेठमल ढढा, लिछमीलाल नीमाणी. अगरचद लूणावत, आसकरण वछावत, केवलचद लूणीया, मेघराज ललवाणी, जीवणचन्द, बराडयी, सुगनमल डाकलिया। उदमल नहार, बगतावरमल कोठारी, गमीरमल पारख, घेवरचन्द बांठियां, सुरजमल डागा, सिवलाल बूरड, नथमल गोधरा, नेमीचद, छजलाणी, जोगराज सराफ, अखयराज लोढा, दीपचन्द मींगी, अनराज बोहरा। ममीरमल काकरिया। शिवललाल गु० सुरजमल गु०। दीपचंद गु० चुनीलाल गु०। मनसुखदास गु०। प्रतापचंद गु. सुजाणमल गु० पन्नालाल वैद सिमरथमल गु० सुजाणमल गु २ जडावचंद ढ. लछमीचंद ढढा अमरचंद ढ मीसरीलाल ढ सुगनमल गु. केसरीचद गु. दीपचंद गु. २ हीरालाल गु.

किसनलाल गु सोभागमल गु. भीखणचद गु. मोहनलाल नीमा रेखचंद नी. लछमीलाल लूणा आसकरण गु० राजमल गु. माणकचंद गु. लीछमीलाल गु० सुगनमल गु० २ घेवरचंद गु. राजमल गु २ मूणलाल गु० जोगराज गुरु भैरुदान गु० रोणुलाल गु० सोभागमल गु. २ घेवरचंद कोठा सोभागमल गु. ३ समीरमल वैदा कल्याणमल वै. चांदमल वै उदेराज पार. रावतमल पा. मोनराज गु. जोगराज गु. २ हिरालाल गु. २ सैंसमल गु. मीसरीलाल गु. किमनलाल गु. पाबूदान गु० अगरचंद० गु० लिछमीचंद गु० सपतलाल गु. जोगराज गु. ३ संपतलाल गु २ नेमीचद गु. सुखलाल गु० धनराज गु० कुंवरलाल गु० अगरचंद गु० अगरचद गु० शिवदानमल गु० नेमीचंद गु० २ रतनलाल गु० दोलतमल नाहर । गुलाबचंद गु० आइदान गु० नेमीचन्द गूलेच्छा चम्पालाल गु० अखैराम गु० नथमल वै० रतनचद गु० कनकमल गु० राजमल ३ चंपालाल गु० तेजकरण कोठा० लाभचंद कोठा० पेमचंद ढ० मोहनलाल ढा० मिमरथमल गु० २ केसरचंद, गु० रेणुलाल गु० २ अमरचंद गु० संपतलाल सरा मीसरीलाल गु. २ शंकरलाल गु. समीरलाल गु० लूणकरण संकरलाल गु. नेमीचंद गु० ४प्रेम गु. लीछमीलाल गु० २ कुवरलालगु. दीपचंद गु० २ आसकरण गु० २ कुवरलाल नीमा० लाभचंद नीमा० मंगरलाल नीमा० घेवरचन्द गुलेछा

२ आसकरण गुलेछा मनालाल गु० राजमल गु० ४ मूलचद गु. लाभचद वैद जेठमल वेद मगनमल गु. नेमीचंद गु. घेवरचद ५ गु० मौणकलाल गु. मीठुलाल गु० कुवरलाल गु. फूलचंद बूरड, नेमीच० गु० घेवरचं०गु. ४ मोनरा गु० पानमल गु० मदनसिंह ढढा गुलाबचद गु० तेजराज गु० दलीचद वैद्य छगनलाल मुत्ता पानम० गु० सुगनमल कोचर। आदि करीब २०० मुखिया २ श्रावकों केद. हैं इस घोषणा में फलोदी मे व्यभि-चार का अड्डा टूटने पर ज्ञानसुदर के सब अंधे भक्त निराश होगये क्योंकि रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला की रकम से ही वे लोग गुलच्छेंर उड़ाते थे, अब उन्हों के सूत्रधार की पोल खुल जाने से उन्हों की शिकार मारी गई। निदान ५--७ गुंडों ने मिलकर फलोदी श्री सघ के नाम से एक अभिनन्दन पत्र तैयार किया और ज्ञानसुन्दर के पास आकर बोले कि महाराज आप न घबराइये हम हर तरह से आप की मदद में तैयार है आपके तीन चौमासों में हम को बहुत लाभ हुआ है। लो यह हम सार्टिफिकेट देते है कि आप पक्के ब्रह्मचारी और पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय है सोजत से हम वकील बुलाते हैं चाहे ज्ञानपुष्प माला की सारी रकम जैन पत्र के ओफिस में चली जाओ, मगर आप की महिमा हम नहीं घटने देंगे। फिर क्या था, दुम दबा कर भागते हूए कुत्ते को मानो दीवार की ओट मिल गई। समुद्र में डूबता हुआ मनुष्य जैसे फैन पकड कर बाहर निकलना चाहता है वैसे ही श्रीसंघ को

झूठा कह कर महामृषावादी ज्ञानसुन्दर साध्वी की भी झूठी बदनामी उड़ाता हुआ अपने को निर्दोष बताने की चेष्टा करने लगा, निदान सफा झूठा होकर यह भ्रष्टाचारी फलोदी से निकल भागा और लोहावट में आकर फिर व्यभिचार सेवन करने लगा। गेवरचन्द के भ्रष्टाचारों के नमूनों में लाभचंद .जैन लिखते है कि "जाका पडा स्वभाव जाशी जीव सूं। नींबन मीठा होय, चाहे सींचो गुड़ घी व सूं ?॥ छोगमलजी पृथीराजजी आदि केई एक भद्रीक श्रावकों को तो इस धर्मधूर्त्त ने अपने पंजे में ऐसे फसा लिये कि वे लोग आंख मीचकर अन्धे होगये। बिचारे हीरालालजी नामक २२ सम्प्रदाय के साधु ने तो लोगों को बहुत समझाया था, कि, यह पुराना पापी है। हमारे इन्द्रमलजी, खेमराजजी, मगनजी, मुन्नीलाल सुवालाल, आदि कई साधुओं को इस महापापी ने ही बिगाड़े थे। यह असली की औलाद नहीं है इसका छोटा भाई तो अपने शाप द्वारा मुसलमान बना लिया गया है, और यह म्लेच्छ जहां तहां जैनधर्म को भ्रष्ट करता फिरता है इत्यादि हीरालालजी की कही हुई सब घटनाओं का उल्लेख कारण पाकर फिर कभी लिखूंगा। निदान केवलचंदजी ओस्तवाल ने बीसलपुर आदमी भेज कर इन सारी बातों की जाच कराई तो, सब सत्य निकली वहां के लोगों ने कहा आज १२ वर्ष उपर हो गये। ज्ञानसुंदर के छोटे भाई हस्तीमल का कहीं पता नहीं

है अफसोस जब ५२ समुदाय वालों ने लोहावट में यह घोषणा करदी कि ज्ञानसुदर म्लेच्छ के । से पैदा हुवा है । तब यह मूढ हीरालालजी साधु पर जल कर खाख होगया और उनों के १०८ साधु सतियों का पडदा खोल कर पागल के समान बकने लगा। तथा कई इश्तिहार और पुस्तकें छपा कर उन्हों को पेशाबपन्थी आदि विशेषण देकर झूठी बदनामी करने लगा। यह लोहावट काड भी बहुत लबा है, पुस्तक बढ जाने के भय से छोड़ता हू, अगर हमारे पाठकों की विशेष प्रार्थना होगी तो फिर कभी लिखूगा। निदान पाप छुपाया ना छूपें। छूपेंज मोटा भाग दाबी कभी ना रहे, रुई लपेटी आग ॥ १ ॥ एक युवती विधवा का जन्म भ्रष्ट करदेने के कारण ज्ञान सुदर को पुलिश ने आ पकडा परंतु ज्ञान पुष्पमाला ओफीस से धन की थेलियां लेकर ज्ञान सुंदर के पिठु लोहावट पहुच गये और जमानत देकर इस भ्रष्टाचारी को रातों रात नागोर की तरफ रवाना कर दिया। धिक्कार २ व्यभिचारियों के पक्षपाती और स्वारथपरायण हमारे कितनेक, मूर्ख श्रावकों ने ही परम विशुद्ध जैन धर्म का सत्यानाश किया है। हथकडियें डलवा कर इस महानीच व्यभिचारी को जेल जाने देना ही अच्छा था कि. आयदे पर और भी ऐसा कुकर्म कभी न करे। ज्ञान खाते की रकम फलोदी से नागोर लेजाकर ज्ञान सुंदर के भक्तों ने पूजा प्रभावना और साधर्मी वात्सल्य

द्वारा भक्ति दिखा कर सब लोगों को इस धूर्त की माया जाल में खूब ही फंमायें और मांति २ के लाभ बता २ कर आस्तिक जैनों से हजारों रुपये बटोर लिये । मेझरनामे की १२ वीं ढाल में तपागच्छ के साधुओं के लिये तो ज्ञान सुंदर लिखता है कि, "रचना करावे पहाडनी उभा रही पोते आप । अमुको लाग पहोलो करो अज्ञानी मेवे बहू पाप ५ अणुमान्ञ पृथ्वी कायमा जल बिंदूए कह्या जीव असंख्य । त्रस थावर हणावता लज्जा छोडी हुआ नि:संक ॥६॥ चैत्यवासी पहेला कइ । नहीं मर्याई कोई पूजा साथ । आगम पाठ दीसे नहीं पास थाए मूकी मर्याद १४ साधु गावे राग थी । जेम २ वागे मृदंग ताल । द्रव्यस्तव जेवो मेवीयो द्रव्यलिंगी मोवे कह्या बाल ॥१५॥ परन्तु नागोर के श्रावक कहते थे कि यहा पर ज्ञानसुन्दरजी खुद पहाड़ों की रचना कराने के लिये मिट्टी खुदवा कर मंगवाते थे, कच्चे पानी की विराधना करवा कर डूगर बनवाते थे, त्यागी साधुओं की प्रति क्रमाणादि समस्त क्रियाओं को छोड़ कर जिन मंदिरों में जाकर दीपक की रोसनी में पहर रात्री तक अपने हाथों से फूल काटते थे । धिक्कार २ सावद्य कामों को खुद न छोड कर दूसरों की झूंटी बदनामी करना यह ज्ञानसुंदर की नीचता नहीं तो और क्या है । साध्वीयों को बिगाड़ देने परभी खरतर गच्छ वालों को अपना पक्षपाती देख ज्ञानसुदरजी को निश्चय हो गया कि अब मैं आहिस्ते २ खरतरगच्छ को भी

स्त नाबूद कर सर्व ओसवालों को अपने पक्ष में मिला लूंगा निदान फलोदी (पार्श्वनाथ में) आ इस जैन धर्म के शत्रुने महाजन वंश मुक्तावली की काट शुरुकी, जिसको अनेक विद्वानों और श्रीपूज्यों के पुराने दफ्तरों से संग्रह करके निर पक्षदर्शी बीकानेर निवासी उपाध्याय यति वर्य्य श्री रामलालजी गणिने ३० वर्षों पहेले छपवाई थी । जैनियों को आपस में लड़ाने के लिये इस काट का नाम, जैन जाति निर्णय, तो लिख-कर इस जैन धर्म के शत्रुने छपवा दिया, परन्तु किसी प्राचीन और प्रमाणिक ग्रंथ का पाठ देकर विद्वानों के सामने आज दिन तक किसी भी जैन जाति का निर्णय नहीं कराया है । भेम्फरनामे की मु० पृ० १० पर ज्ञानसुन्दर लिखते हैं कि पुस्तक छपावा बाबत संघ सभा में दाखल करवु अने सभा मंजूरी आपे तोज छपाववो । ठीक दूसरों के लिये कायदा घडता है, और खुद एकांत कोटडी में बैठ, वे शिर पैर की उट पटाग बातें लिखकर बिना किसी को बताये ही मन माना जैन जाति निर्णय छपा कर जनता को धोखा दिया, यह ज्ञानसुंदर की कितनी बड़ी भारी धृष्टता है । इस पुस्तक की पूर्ण प्रत्यालोचना तो उक्त यतिजी ही करेंगे, किन्तु बहुत से सज्जनों के अनुरोध से मुख्य २ बातों का ही समाधान मेरी तरफ से लिखा जाता है किसी भले आदमी के घर में कुत्ता नुकशान करता हो तो देखने वाला विवेकी मनुष्य उसे अनुचित समझ अवश्य धुत कारता है

दुष्ट बुद्धि ज्ञानसुन्दर के अनुयायी लोग खरतर गच्छ की घति को देख भले ही खुश हों परन्तु मैं तो किसी का पक्षपात न कर सत्य कहूंगा कि ज्ञानसुंदर भाई ने अपनी अज्ञानता में महान् उपकारी मांस मदिरादि दुर्व्यसनों को छोडा कर राजपूतों का जैनी बनाने वाले खरतर गच्छ के प्राचीन जैनाचार्यों का नाम तक भुला कर ओसवाल समाज को कृतघ्नी बनाने का साहस किया है।

जब कि संसार भरमें संगठन का आन्दोलन हो रहा है, सब मजहब वाले संगठित होकर अपने २ धर्म की उन्नति कर रहे हैं। जिस संगठन की जैन कौम को अत्यन्त आवश्यकता थी, ऐसे समय में अनार्य ज्ञानसुंदर ने अश्लील पुस्तकें प्रकाशित कर, जैन कौम का संगठन करना तो दूर किनारे रहा, कुछ रहे सहे प्रेम को भी, धूल में मिला दिया है। पृ०-११ वें में आप लिखते हैं कि उपाध्याय रामलालजी ने अपनी किताबों में जो जो अनुचित बातें लिखी हैं उस पूर्वपक्ष में रख उसका योग्य समाधान उत्तर पक्ष में किया जावेगा ॥ समीक्षाः- १० वर्षों से तो महाजन वंश मुक्तावली में किसी विद्वान् को कहीं अनुचित बातें न दीखीं, और अब उल्लू के समान पैदा हो कर ज्ञानसुंदर महाजन वंश मुक्तावली को अनुचित ठहराते हुए, शान्ति प्रिय जैन संघ में विद्रोह फैलाता है।

इस के पहले पृ० ७ वें ज्ञा० लिखते हैं कि यतिजी की लिखी महाजन वंश मुक्तावली के लिये तो 'खारा समुद्र' के सिवाय अन्य स्थान ही कौनसा है कि जहा पर विश्राम ले। समीक्षा चिना कारण ही ज्ञानसुंदर भाई का श्री खतर गच्छ के यतियों पर कितना बड़ा द्वेष है कि उन्हों की पवित्र पुस्तकों को यह खारे समुद्र में फेंक देने लायक बताता है। ऐसे ही पृ० २ से ४ तक श्री खतरगच्छ के महान् २ आचार्य जिन्हों ने अपने योगबल से सर्व साधारण को जैन धर्म की महिमा दिखा कर तथा मरते हुए अनेकों को अभय देकर सदा के लिये जैनी बनाये, उन्हीं की हसी उड़ाकर ज्ञानसुदर भाई ने अपनी नास्तिकता जाहिर की है। इन ९ कलमों की भी समीक्षा यथा प्रसंग करूगा। प्रथम मूल की ही समीक्षा की जाती है। कारण-एक तो अपने ज्ञान ध्यान के आगे हम को इतनी फुरसत ही नहीं। फिर द्रव्य का भी सर्वथा अभाव है। और ज्ञानसुंदर ऐसा कोई प्रमाणिक पुरुष भी नहीं है कि जनता पर जिसकी प्रत्येक उक्ति का प्रभाव पड़े। अतः मोटी २ बातों की ही समीक्षा कर देनी ठीक है कि जिससे कोई भद्रीक मनुष्य मलेछ ज्ञानसुंदर की मिथ्या पुस्तक को पढ़ कर मति भ्रंस न हो॥ कुँमला गच्छीय लखजी महात्मा के अनुरोध से सरल चित्त उ० रामलालजी गणिक अपनी महाजन वंश मुक्तावली में लिखा था कि रत्नप्रभःसुरी एक शिष्य के सग

के लिये प्राचीन पट्टावली का झूटा ही नाम रख कर ज्ञा० लि० कि "श्री मदरत्नप्रभसूरी पंचसय शिष्य, समेतलुणाद्रही समायति" समीक्षा-क्याही मुर्खों की लीला है। बात कहता है ओशीयां की और लेख बताता है। लुणा द्रही का यह लुणाद्रही क्या ज्ञा० नानी है। ओशीयों हमने बहुत ही तपास की मगर लुणाद्रही का कहीं पता नहीं चलता अगर कहो यह नाम उसी डूंगरी का है, जहां कि इस समय रत्नप्रभूसूरिजी के चरणों की स्थापना है तो यह भी असत्य है कारण सं० १९३५ की बनी हुई ज्ञान सुन्दर की प्राचीन पटावली कहती है कि "देव गृहस्य उत्तर स्यांदिशी लूणद्रहा भिधान डूगरी काया श्री महावीर बिंकाराथि तुमारब्धं समी० मंदीर से उत्तर की तर्फ हमने कोसों तक तलाश की परंतु रेती के टीयों के सिवाय लुणद्रह, वा डूंगरी का कहीं नाम निशान भी नहीं पाया। अतः सिद्ध हुआ कि ज्ञानसुंदर और उसका पट्टावली कार दोनोंही महा मृषावादी है। क्योंकि आधुनिक चरणों की कल्पना वाली डूंगरी ओसियां के मंदिर से अग्नीकोंण में है, न कि उत्तर दिशा में और उसका, लुणाद्रही, नाम भी कोई नहीं कहता। ज्ञानसुंदर भाई अपनी पट्टावली का पृ० ५ वॉ अच्छी तरह मे देखे-सूरी-पंचासया-शिष्य-लुणाद्रही-और समायाति, आदि पदों को देखने से पाया जाता है कि-इसको बनाने वाला बिलकुल ही निरबोध था। मूर्खों के वचनों पर विश्वास कर शांति मार्ग

में कांटे निखरना, समझदारों का काम नहीं आगे पृ० १२ पर ज्ञा० लिखा पात्राणि प्रतिलेख्य मासं यावत संतोपेणस्थिता बाद सूरिजी विहार करने लगे तब देवीने विनती करी इस पर ३५ साधु विशेप तपश्चर्या के करने वाले सूरिजी के पास चतुर्मास किया शेष ४६५ मुनि (जो बचे थे) विहार कर अन्य स्थान चर्तुमास किया,, समी० महामूढ ज्ञान सुंदर को अपनी समाचारी का भी बोध नहीं है।

देखिये पात्राणि प्रतिलेख्य मासंयावत्सतोषेण स्थिताः पश्चात् विहारः कृतः। पुनः कदाचिच्च आयातः। शासन देव्या कथित मो आचार्य अत्र चतुर्मासिक कुरु। तव महालाभो विष्यति। गुरु. पंच त्रिंशत् मुनि भिः सह स्थितः उ० प० पृ० ६ आगे पृ० १२ परही ज्ञा० लि० " यतिजीने जैसा भाटों से सुना वैसा ही लिख मारा है। न तो रुई का सांप सूरिजी ने बनाया, न राजा के पुत्र को सांप काटा था " समी० सैकडों वर्षों की लिखी हुई और प्रचालित भाटों की ख्यातों को कल्पित बता कर, और मन मानी झूंठी बातों की पोथियां छपवा कर सत्य इतिहास का खून करता है, यह ज्ञानसुन्दर की कितनी बड़ी नालायकता है। चारण भाट जागा कुलकुरु आदि की पोथियों के सिवाय किसी शास्त्र में कोई भी जाति का प्राचीन इतिहास नहीं मिल सकता यति रामलालजी झूठे नहीं अगर झूठा है तो, कुवला गच्छ का कुलगुरु लखजी महात्मा है। देखिये वह क्या लिखते हैं।

लखजी महात्माने भी आगे हो; अपना इतिहास लिखने दिया कि यह मैंने सरल भाव से लिख लिया हम तो सिर्फ खरतराचार्य प्रति बोधित मात्र श्रावकों का ही इतिहास लिखते थे असत्याक्षेप निराकरण पृ० १२ । यह असत्यता मेरी नहीं किन्तु कुंअला गच्छ के गृहस्थी महात्मा लखजी ने जो मुझे पत्र दिये उनकी है पृ० ६ । अस्तु ज्ञान सुंदर भाई इतिहास कल्पद्रूम देखे इसमें लिखा है कि ।

राजा उपलदे परमार, नगर ओसिया नरेश्वर । राज रीत भोग वे, सगत सचीया दीनो वर, नव - सौ चरू निधान, दिये सौनिइया देवो, उलाऊ परा अंगज किया, पाय नामा केंवी इमकरी राज भोग - वें, अदल बोहुर वरस वदित होय नहीं राज पुत्र चिंता निपट काहि कथा सोय ॥ १ ॥ हे राजा कहिये काज करो चिंता मन माहिं, सुतन उदर तव लिख्यो, देऊ कि मै अक विनाहिं । नरपति हुवे विनती, जोड कर हाजिर ठाढो कृपा करो महाराज, धर्म में रहह गाढो । पटा परगना गांव खजाना खास खुलाऊं । कबहून लोपू कार, हुकम श्रवण सुख पाऊं गुरु कह्यो त्याग धन मांगवा, एक वचन मोहि दीजिये मिथ्यात्व त्याग जिन धर्म गहो दान शील तप कीजिये ॥ १० तहति वचन उर धार नृपति श्रावक व्रत लिया पुरइंडी फिरवाय नार नर मेला किया । भिन्न भिन्न सुणे वखाण गुरु मुख के वापक ।

दिलगीर,- दीनदायक फिरदाखे, पुत्र विना सूरी राज म्हारो कृपा राखै। देवी दया विचार, वचन दीनो निरदोसी। रहयो राय निरचित पुत्र निश्चय इक होसी। जुग जाहर जिस पूरसुख। घणा नरा पण हलटसी। चहूं आण आण फिरसी अठे परमारांगढ़ पलटसी॥२॥ देवी के वर दान पुन्य राज फल पायो नाम-दीयो जयचंद, वरस पन्नरे परणायो। मात, पिता भड महला सुख, मांणे तिण अवसर रिसीराय रतनप्रभु, मास खमायों, । सिख चौरासी साथ व्रत सयम, सब साधे। धरे ध्यान इकतार, देव जिन इन्द्र अराधे। शहर में गया सिख वहरवा। धर्मलाभ-करता फिरे। इण नगरी में दाता न को। बसे सूम-साखा सिरे॥ ३ ॥ घर घर सिख फिर गये, पवित्र अहारन पायो। विप्र एक, तिणवार वचन इस डोवतलायो। ममगृह पावन, करो धन धन भाग हमारो॥ आज हुओ आवणो मुनि इह-देश तुम्हारो सुझतो अहार, दोषण विना। खीर खाड वहिरा-हिया उज्जले चित्त-दोहू, जणा ले गुरु आगल आइया॥ ४॥ देखी गुरां-गोचरी-ध्यान आलोयन-कियो। शुजदत्यो प्रमाण जोय-ब्राह्मण घर लियो। नगर माहिं, नव लाख बसे घर एक-सरिखा। सगति पंथ, मतवाद शीस सींदूरी टीका। समझ हुआ थिर मान, ध्यान अन्तर सुं खोले। शिष्य प्रति महाराज मुसकी, सुखदायक बोले। गुरु कहे वार लागी घणी, कहे शिष्य कि कारणे। शिष्य कहे आहर मिलियो-नहीं हू फिर्यो

घर घर थारणें ॥ ५ ॥ शिष्य गुरु के सुण वयण अहार पृथ्वी परिठायो । पिवण सांप होय गया महल, नृप सुत के घायो । पीवण सांप पीई गयो कंवर ने चेत न कांई । नहीं सास विश्वास सो गहुयें गयो सताई । हाहाकार हुओ शहर में दाग देण चाली दुनी । रतनप्रभु सांभल रुदन दया देख मेह ल्यो मुनि ॥ ६ ॥ मुनि वायक सुण सेण अब राजन भूलानों कौन नाम गुरु कठै सांच दाखवो ठिखानो । नृप वचन सुन कहे मुनी उत्तर इम धारो, उण खेजडै अस्थान कुमर तुम लेर पधारो । साधा सरणें आय नृपत विनती करावे । सीस छुति सेहरो मुकट आपि चरण चढावे ॥ माफ करो तकसीर अब आप चूक वख साईयो माँ वृद्ध काल की लाज हे गुरां कुंवरजी वांहिये ॥७॥ करुणा सिंधु दयाल नृपति को हंसी वॅर दियो । गयो रोस तत काल, मृतक सुत तत छिनेजी यो । थियों स्वास विश्वास, नयन खुलिया मुख वाचा । रोग दोप सब दूर शब्द सत गुरु का सांचा । आलस मोडत उठियो । कहे नींद आई भलां किहि काज म्हने लाया अठे, धूरसे कहो सांची गलाँ ॥ ८ ॥ खमा खमा सब कहे सब उठी गुरु चरणें लागा । मगलधवल अपार बंधावा आनंदबागा वाग तोरण । छत्रनिशान कलश सोवन, भर मोतियन का थाल, सखियन मिल मंगल गावे । ओछादिया महल बाजार घर रतना चौक पुराइया, जरी खीन खाप पड पांतिया रत्नप्रभु पधाराईया ॥ ९ ॥ नृपत करे

वीनती जोडि कर हाजिर ठाढो । कृपा करो महाराज धरम में रहसुं गाढो । पटा परगना गाव खजाना खास खुलाऊं। कबहुन लो पूकार हुकुम श्रवणा सुण पाऊं । गुरु कह्यो त्याग धन मागना एक वचन मोहि दीजिये। मिथ्यात्व त्याग जिन धर्म गरो दानें शील तप कीजिये ॥ १० ॥ तहति वचन उर धार नृपति श्रावक व्रत लीया । पूर डुडी फिरवाय नार नर भेला कीया। भिन्न भिन्न सुखे वखांण गुरु मुखके वायक । छै काया प्रति पालशील संजम सुखदायक । करि मन सुमोमरूलमिल, मान मौड़ कर जोडिया । सिद्धान्त ज्ञान जिन धर्म को शक्ति पथ मुख मौड़िया ॥ ११ ॥ शील तणों दृढ माँच कर पौषा पडिकौणा । सामायिक मम भाव समकिती दिन दिन दौणा । हिंसा को नहीं लेशु, देश मे आण फिराई, धर्म तणा फल मीठ सबे सांभल ज्यों माई । इहि भांति जैन धर्म धारियो, शक्त पथ मुख मौड़ के गुरु वचन शिरधारी नृप मान मौडी कर जोड के ॥ १२ ॥ इष्ट मिल्यो मन मिल गयो । मिली मिली मिलिया मेल । फूल वास घृत दूध ज्युं तिलयन माहिं तेल ॥१३॥ सहस चौराशि एक लाख, घर गिणती पुर माहिं एकण थाल आरोगिया । भिन्न भाव कुछ नाहिं ॥ १४ ॥ श्राटा झगडा छोडिया गदमद शस्त्र सिपाह । निर हिंसक निर कपट हो चालत झीनी राह ॥ १५ ॥ (इतिहास कल्पद्रुम को देखने से यह भी पाया जाता है कि वर्द्धमान सुरि के ५२ वर्षों क

बाद आचार्य पद पाकर रत्नप्रभः सूरिने ओसियां के उत्पलराज को प्रतिबोध देकर जैन खरतर श्रावक बनाया) यथा ।

वर्द्धमान तणे पछै, वरस बावन पदलियो, रत्न प्रभः सूरी· नाम तासु सत गुरु व्रत दीयो, औस्याहूति उठीया जाय, भिन्न माल वसांणा, क्षत्री हुआ शाख अठार, उठे ओसवाल कहांणा । इखलाख चौरासी सहस, घर राज कुली प्रति बोधियां श्री रत्नप्रभः ओस्यां नगर ओसवाल जिण दिन किया ॥१६॥ प्रथम साख परमार । शेष शीसोदे शिगाला । रणथंभा राठोड वंश चौहाण पंचाला । दया भाटी सो नगरा कछुना धन गौड कहीजे । जादव झाला जिंद, लाज मरजाद लहीजे-खर धरा पाट ओपे खरा लेणा पटाज लाखरा । एक दिवस इता महाजन हुआ शूर वड़ा भड शाखरा ॥ १७ ॥ इत्यादि ।

और जाति भास्कर पृ० १३१ वें पर भी राजा के पुत्र को जीवित दान लिखा है, यथा ऋषि ने कृपा कर उत्पल राजा के पुत्र को जिवा दिया, तब घर २ महा मंगल छा गया, राजा ऋषि के सामने हाथ जोडकर खडा हो गया, और कहा जो आज्ञा हो सो करूं । तब ऋषिराज ने और कुछ न कह कर राजा को जैन धर्म की दीक्षा दी । राजा के जैन धर्म स्वीकार करते ही सब प्रजा वर्ग भी जैनी होगये, फिर वह ओस्यां से उठकर भीनमाल में वसे । क्षत्रिय अठारह शाख के जैनी हुए । वह स्थान पहिला

ओसिया से ओसवाल कहाये। मुरादाबाद निवासी प० ज्वाला-प्रसादजी मिश्र निर्मित जा० भा पृ० ॥१३१॥

अन्य दर्शनियों के ग्रंथों के प्रमाण इसीलिये दिये जाते हैं कि प्रगढा मिथ्यात्व के उदय से ज्ञानसुन्दर भाई उन्हीं को ठीक समझता है। और जैन यति महात्माओं का कथन इसको बिलकुल-नहीं रुचता अब यह देखना चाहिए-कि उत्पल राजा कब हुआ। ज्ञानसुन्दर के परम मान्य पं० गौरीशंकरजी ओझा ने बीकानेर बड़े उपाश्रे में श्री पूज्यजी से हमारे सामने कहा है कि ओसवाल जाति के आदि पुरुष राजा उत्पलदेव परमार, विक्रमादित्य के एक हजार वर्षों के बाद हुए है। वि० दशवी शताब्दी के पहिले किसी राजपूत की संसार में ओसवाल संज्ञा कहीं नहीं थी। उक्त पंडितजी ने रामलालजी से भी कहा था कि आपकी संग्रहीत महाजन वंश मुक्तावली के सब ही लेख सत्य है, परन्तु उत्पलराजा को विक्रमी के चारसो ४०० वर्ष पहिली लिखा यह गलत है। उ० रामलालजी ने अपनी भूल स्वीकार की, और कहा कि यह गलती अबकी आवृत्ति में सुधार ली जावेगी, इत्यादि ज्ञानसुदर भाई अमत्याचे नि० पृ० ६७ देखें। वि० सं १०९३ में पहिली के शिर लेख ताम्र पत्रों आदि में उत्पलराजा का कहीं नाम निश भी नहीं आता। ज्ञान सुदर भाई प्राचीन लेख मणिमाला ५ खंड लेख नं० ६३ देखे तथा महाजन वंश मुक्तावली को अ

ठहराने के लिये जिन २ ग्रन्थों को प्रमाण रूप मान कर ज्ञान सुन्दर ने अपनी समालोचना के पृ० ६ पर प्रकाशित किया है उन्हीं के नं० ६ भारत के प्राचीन राजवंश भा० १ की भूमिका के पृ० १७ पर लिखा है कि यह उत्पल देव मडोर के राजा का शाला था और भीनमाल में कुछ गड़बड़ हो जाने के कारण मडोर में आ गया था। यहां पर इसके बहनोई ने मंडोर से बीस कोश के उत्तर का एक बड़ा थल जो उजाड पडा था इसे रहने को दे दिया। यहीं पर उत्पलदेव ने ओसियाला नाम का एक शहर बसाया। मारवाडी भाषा में ओसियालो, शरणागत को कहते है। यही शहर अब ओसिया नाम से प्रसिद्ध है। यहां ओसियाले के पवार धांधूल कहलाते थे। तथा इसी ग्रं० पृ० ६६ पर लिखा है कि- धूमराज के वंश में सिंधूराज हुआ। सिंधुराज का पुत्र उत्पलराज हुआ। मूता नैणसी ने भी अपनी ख्यात में धूमराज और सिन्धूराज के बाद उत्पलराज से ही वंशावली प्रारंभ की है। उसने लिखा है।

ऊपलराई कि राड़ छोड ओसियां वसियो, सचियाय प्रसन्न हुई, माल बतायो, ओसियाँ में देहरो करायो इत्यादि।

आगे उत्पलराज सहित १६ पीढियों का वर्णन, उन्हीं का ज्ञात समय, और समकालीन अन्य राजाओं के नामतक

लिख दिये हैं। उत्पलराज की तीसरी पीढी में धरणीवराह, जो सौलंकी मूलराज के समय वि० सं० १०३० से १०५३ तक विद्यमान लिखा है। ५ वें पट्टे पर धन्धुक चौलुक्य भीम के समय वि० सं०१०७८ से ११२० तक और १०-वां पट्ट पर कुमारपाल के समय लिखा है।

छेवट १५ वा पट्टधर प्रतापसिंह वि० सं० १३४४ में हुआ और इसके उत्तराधिकारी से वि० सं० १३६८ के आस पास चद्रावती को छीन कर चौहानराव लूभा ने इनके राज की समाप्ती करदी मा० प्रा० रा० च० मा० १ पृ० ८३ देखो। ज्ञानसुंदर भाई अपने मान्य ग्रथों के निर्माता राय ब० पं० गौरीशंकरजी ओझा और साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ (दोनों पं० भी मौजूद हैं) को पूछकर हमारे सामने निश्चय करलें। ओसवाल जाति इतनी प्राचीन नहीं है जैसी तुमने इस जैन जाति निर्णय में लिखा है। और उक्त पंडितों ने ओसवाल जाति के विषय में कोई ग्रंथ भी नहीं बनाया है। तुमने झूठा ही नाम लेकर उन महानुभावों का अपमान किया है। आगे इसी पृ० १२ पर ज्ञा० लि० मंत्रीश्वर उहड सुतं भुजंगेन दष्टः ॥ समिक्षा:- ज्ञानसुंदर भाई का अभिप्राय यह है कि राजा के पुत्र को सर्प ने नहीं काटा, किंतु दिवान के पुत्र को सांप खागया था।

यह लेख भी ज्ञानसुंदर और उसके समाचारी लिखने वाले की मूढता सुचित करता है। यह बात कोई नहीं मान सकता कि, एक दिवान के साथ में राजा प्रजा सब ही जैनी होगये हों। यदि कहो यह उहड मंत्री ही ओसियां का राजा था, तो यह भी असत्य है, कारण उपकेश पट्टावली में बहुत से ठिकाणे इसको सेठ लिखा है।

यथा—श्रेष्टस्य महान् दुखीःखोजातः। जीवितं कथं ज्वालयततः श्रेष्टिनें कथितं। श्रेष्टिनाभ्रंपाणो वालिप्तः। मृतकामानीय गुरुअग्रे मुंचति, श्रेष्टि गुरुचरणोशिरं निवेश्य एवं कथयति, भादयालु ममदेवोरुष्टः ममग्रहोशून्यो भवति। तेन कारणेन ममपुत्राभिक्षांमदेहि। लोकैः कथितश्रेष्टि सुतः नूतनं जन्मा आगतः। श्रेष्टिना गुरुणा अग्रे अनेकमाणेमुक्ता फल सुवर्ण वस्त्रादि आनीय भगवान् गृह्यतां। पूर्वश्रेष्टिना नारायणप्रासादं कारायितु मारब्ध। इत्यादि पृ० ६ देखो उ० ग० प० जै० सा० सं० छपी हुई॥ अगर उहड के पास कुछ जागीरी होती तो वह मणी मोती वस्त्रादि की प्रार्थना के बदले, ग्रामादि देता। खैर आगे ज्ञा० लि० गुरुणा प्रासु जल मानीय चरणौ प्रक्षाल्य तस्य छंटित ससाहस्कारणों सज्जो विभुव" समाचाः इस लेख में ज्ञानसुन्दर ने पूर्ण मूढता जाहर की है। शुद्ध लिखने और बोलने

की भी योग्यता नहीं और ग्रन्थ लिखने को बैठ जाना, यह कितनी बड़ी भारी धृष्ठता है। हमारे पाठक विचारें कि प्रासु महसात्कारणे विभुव कौनसी भाषा के शब्द है। हरद्वार से आये हुए एक बाबाजी को अजमेर में एक भक्त ने पूछा था कि महाराज कहा से आये, कहा जाओगे। उत्तर में बाबाजी बोले, बच्चा हंगद्वार से आया, घरुद्वार मेरा हंगद्वारा में ही है, और वहीं पर मैं रहता हू। गुरु के साथ ४ दिन फौकी-रजी के मेले में रहकर मैं तो हंगलाज को जाऊंगा, और गुरुजी डाभू की फाड में होकर पीछा हंगद्वार में जा पहुंचेगें। भक्त यह सुन कर बोला कि महाराज यह आपका निवास स्थान हंगद्वार कहा पर है। बाबाजी बोले बेटा हंगद्वार तो बड़ा तीर्थ और गुदापुरी के पास है। भक्त बोला ठीक महाराज कुछ प्रसादी पाओगे। बाबाजी बोले बचा गुरुजी के तो आज खाघसी है सो वह तो नर अहार ही करेगें और मुझको तो एक भगत मिल गया सो नारायण के नाम से मैंने आज खूब मीष्टान्न ही मीष्टान्न पा लिया। भक्त बोला महाराज ऐसे क्या कहते हो। बाबाजी बोले बच्चा जैसा मेरा गुरुजी ने गू खाया ऐसे ही मैं खाता हूं। छी २ ठीक यही दशा हमारे ज्ञानसुन्दरजी की है प्रासुक को, प्रासु। सहसात्कारेण को सहसात्कर्ण और वभुव को विभुव लिखता है। इसकी सभी पुस्तकें महान् भ्रष्ठ और अशुद्धियों से भरी

हुई है । बुद्धिमान कोई उन्हें पसंद नहीं करते । फलोदी का श्री संघ लिखता है किः—

जैन कुल कलंक ज्ञानसुन्दर के लिये यहा की सरकारी अदालतों में बेश्रा औरतें फौजदारी मुकदमों में झगड़ रही है ज्ञान प्रचार के निमित से द्रव्य संग्रह करने के लिये ता इसने, यहां पर एक तरह की दुकानदारी खोलरखी है उन्हीं रुपैया के जरिये जैन पत्र को भी प्रलोभन में डाल के अपने हाथ का कठपूतली बना रखा है, उसीके पास से अपनी झूठी माहिमा बढाने के लिये अशुद्ध भाषा की भ्रष्ट पुस्तकें वां मन माने अप्रमाणीक लेख प्रगट करवा के जैन समाज को भ्रम में डालने और अपने अवगुण छिपाने का जी तोड़ परिश्रम कर रहा है ।

ज्ञानसुन्दर ने अपने अज्ञ और अन्ध भक्तों की श्रेणी में अपने हाथ से झूठ-मूठ ही कागद काले करके गुलेछा व अन्य केई, जाति वालों के शुभ नामों का उल्लेख कर अपनी माहिमा बढ़ा के दुनिया को भ्रम में डालने का प्रयत्न किया है कि हमें इतने आदमी मानते हैं, पर यह झूठा है, इसे यहां कोई समझदार साधु नहीं मानता ज्ञा० व० घो० खैर ज्ञानसुन्दरजी के लेख से रत्नप्रभुसूरी बडे अभिमानी और

ग्रानी सिद्ध होते हैं जैसे—गुरुणा प्रासुजलमानीय चरणा ाल्य तस्य छटित" अर्थात्

गुरु ने प्रासुजल लाकर अपने दोनों चरण धोये, ार उसीका छींटा देने से उसी दम सेठ का बेटा जी उठा। ृ ज्ञा० नि० के पृ० २ के समान हमको भी यहा पर ाना विचार अवश्य होता है कि—

अगर सेठ उहड़ के पुत्र को दूसरी दफे किसी साप ने ाट खाया हो, और उसका विष किसी मुसलमान फकीर ने ्तारा हो तो, उन ३८४००० घरों के ओसवालों को उस ाहजी का उपासक बनना पड़ा होगा।

एवं उन्हीं के परिवार वालों को कितनी वार सांप काटे और कितनीवार धर्म बदलावें इनकी सख्या तो ज्ञानसुन्दरजी ही कर सकते हैं अगर इसके रत्नप्रभसूरि, नेपाल या अनार्य देश में चला गया होता, तो वहा क्रिरोड़ों म्लेच्छों को सहज में जैनी बना लेता। कारण वहा साप बहुत है और बहुतों को काटा करते हैं। खरतर गच्छ को नेस्त नाबूद कर अपना मतलब चाहता है। यह ज्ञानसुन्दर की कितनी धृष्ठता है। ज्ञान-सुदर को पूछा जावे कि यह "सुप्राजल" क्या चीज है, धोपानी (समाधिया) तो नहीं है, बारां सूत्रों की भाषा पृ० ४८

वे पर सर्पादि सब ही प्रकार के जहरों की एक ही दवा " पेशाब " ज्ञानसुंदर ने लिखी है इससे भी पाया जाता है कि प्रासुजल प्रस्रवजल को ही कहा है। खुद अशुची का आचरण करते हुए भी २२ संप्रदाय वालों की बदनामी करना ज्ञानसुंदर की यह कितनी बड़ी नीचता है। आगे पृ० १३ पर उपकेश और कोरट का आधुनिक श्लोक भी झूठा है। इन सुधरे हुए जमानों में तुम्हारे बहुरुपियों की इन्द्रजाल माया को विद्वान् नहीं मान सकते। अगर विक्रमादित्य के ४०० वर्ष पहिले ऐसा प्रभाविक पुरुष कोई हुआ होता तो अवश्य ही जैन शास्त्रों में उनका वर्णन आये बिना नहीं रहता। दर असल में उद्योतनसूरि के ८४ विद्यार्थियों में २५ वां शिष्य रत्नप्रभसूरि था। देख तुम्हारे माने हुए प्रमाणिक ग्रन्थ में नं० १० जैन गौत्र सग्रह पृ० ४ पत्र जीर्ण होने के कारण रत्न शब्द फट गया है आगे इसी जैन जाति के निर्णय पृ० १३ पर श्री खरतरगच्छी यतियों को झूठे ठहराने के अनेक हेतु बताते हुए ज्ञानसुन्दरजी लिखते हैं कि अवल तो सं० १०८० में पाटण में दुर्लभ राजा ही नहीं था।

फिर आगे पृ० १४ वें पर चार कारण बताये हैं कि जिनेश्वसूरी अभयवसूरी ने अनेक ग्रन्थ लिख उन्होंने कहीं खरतर शब्द नहीं लिखा है। ज्ञानसुन्दर भाई

र्थ अभिप्राय यह है कि आचार्य श्री जिनेश्वरसूरिजी और अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छ में नहीं हुए हैं। किसी और गच्छ में हुए हैं। और जिनेश्वरसूरि को खरतर पद देनेवाला सं० १०८० में पाटन के अन्दर कोई दुर्लभ नाम का राजा नहीं हुआ है। खरतर गच्छ वाले जो कहते हैं कि सं० १०८० में दुर्लभराजा ने पाटण में जिनेश्वरसूरि को खरतर विरुद दिया बिलकुल झूट है। समीक्षा-में कहता हूं की ज्ञा० की यह लेख श्री खरतरगच्छ पर पूर्ण द्वेष और निरी मूर्खता, तथा अज्ञता का सूचक है। तुम कौनसे ज्ञान से कहते हो कि सं० १०८० के अन्दर पाटन में दुर्लभ-राजा नहीं था। स्यात् धर्मसागरानुयायी तपागच्छीयों से सुनकर ज्ञानसुंदर ने ऐसा लिखा है। यदि हो तो यही मूर्खता की है। ज्ञानसुंदर माई में यदि कुछ भी ज्ञान का अंश होता तो वह निन्हों का अनुकरण कभी न करता। उपा० रामलालजी ने ठीक लिखा है कि "ज्ञानसुंदरजी नाम है, पर नहीं ज्ञान का लेश। गुरु जन के निन्दक प्रबल हृदय भरा है द्वेष ॥१॥" अज्ञान वश लोग आपको ज्ञानसुंदरजी व साधूजी कहते होंगे। क्योंकि लोकोक्ति है कि "जगतण को मगतण कहें, कहें चौर को शाह। ...को गाड़ी कहें यही जगत की राह ॥२॥ असत्यात्ते० ३॥

कहइं अनामुका त्रीवाड़ी आकिस्यु । तेत्रीवडी कहइं यमहा कोईं देव शाक्ति पुनः अत्र गौ १ अनडं वत्सी जीवने अभयदान ना दातार कृपावंत दयावंत जांणी सकल मिथ्यात्विे श्री गुरु ने नम्या । श्री जिन शासननी उन्नति हुई इं एतल इम नाम तो श्री जिनदत्तसूरी पिण गौ १ वत्सी २ ने अभयदान देव थकी उपगारी हूया । तेह थकी सकल मनुष्यें वडनगरें मिली श्री जिनदत्त ने (उपगारी सूरी) एवि जो नाम कह्यो । पुनः अण हिल्लपत्तन पश्चैं श्री वायड नगरे श्री गुरुइं वायड ज्ञाती या घणा गृहस्त प्रतिबोधी जिनधर्म्म वासित कीधा । पुनः पुनः श्री सुरीइं वृद्ध सिंधु देशी उचा नगरे पंच नदी मध्य भागइं सैयद मलेछन इं वाद इं जीत्या । तिहा घणा जिन शासन इं शोभनीक सुरी कही वाणा श्री गुरुना नाम स्मरणें दुष्यात्ति विलय जाय । अनुक्रमिश्री कुमारपाल राज्ये विक्रम स० १२११ वर्षे श्री सुरीनइं स्वर्ग गमन हुआ इति श्री जिन दत्त सुरी सम्बन्ध पृ० ॥ २८ ॥

तपागच्छ की इस पट्टावली को देखने से मालूम होता है कि धर्मसागरजी के पहिले, खरतर गच्छ और तपागच्छ में बिलकुल द्वेष भाव नहीं था । और इससे यह भी पाया जाता है कि उंच्चा नगर में श्री जिनदत्तसुरि के प्रतिबोधे हुए १८ गोत्रों के क्षत्रियों पर से ही हमारे कुमलागच्छीय

भाईयों ने रत्नप्रभसुरी के नाम से अपनी प्राचीनता का ढांचा खड़ा किया है। खैर हम किसी की उन्नति में बाधा नहीं डालते परन्तु अफसोस है ज्ञानसुन्दर की नालायकता पर, कि यह उपकारी पुरुषों की बदनामी कर, अपनी उन्नति चाहता है।

खतरगच्छ को प्राचीन ठहराने के लिये बहुत से अज्ञ लोक धर्मसागरजी निर्मित ग्रथों क प्रमाण देते हैं। ज्ञान-सुंदरजी ने भी उन्ही का अनुकरण कर अपनी हार्दिक दुष्टता प्रगट की है। क्योंकि पापियों को पापी का ही मार्ग अच्छा लगता है। ज्ञान सुन्दर भाई एतिहासिक राम सग्रह भाग चौथा अच्छी तरह से देखें। इसमें धर्मसागरजी कथित सभी ग्रंथ अप्रमाणिक माने गये हैं॥ जैन साहित्य संशोक खं० २ अं० ३ में लिखा है कि।

श्वेताम्बर मत ना खरतर अने तपगच्छ बच्चेनी मतामती पण प्रबल थइ पडी हती। अने तेमा धर्मसागर उपाध्यायजी नामना तपगच्छीय विद्वान् पण उग्र स्वभावी,साधूर,कुमती कंद कुदाल (याने प्रवचन परीक्षा) नामनो ग्रथ बनावी तप-गच्छ सिवायना अन्य सर्व गच्छ अने मत सामे अनेक आक्षेपो मुक्या। आथी ते पता खलभली उठ्या।

अने तेनुं जो समाधान न थायतो आखा जैन समाजमां दावा नल अग्नि प्रगटे। आमाटे जोखमदार आचार्यो ने बच्चे पड्या

मगर रही शकाय नहीं, तेथी तपगच्छाचार्य विजयदानसूरिये उपरोक्त ग्रथ पाणी मां बोळावी दीधा अने तेने अप्रमाण ठरा व्यां । तेमणे जाहेरनामुं काढी, सात बोलनी आज्ञा काढी, एक बीजामत वालाने वाद विवादनां अथडा मण करता अटका वव्याहता, पण आटाल थी विशेष जोहिए तेवो, ने शम्यो । त्यारे विजयदानसूरि पछी आचार्य हीरविजयसूरिये उक्त सात बोल पर विवरणकरी, बार बोले, ए नामनी बार आज्ञाश्रो जाहेर करी हती स० १६४६ आशी जैन समाजमा घणी शान्ति आवी । अनेखरतर गच्छ ना अने तपा गच्छना आचार्यो एक बीजानी निंदामा न उत्तरता जैन धर्म नो प्रभाव अन्य समाज मां पाडवा माटे प्रयत्नशील थया । तपा ग० वृ० पट्टावली में भी । लिखा है कि ।

मांडवगढ चोमास रही पुन गुजराति गाधरा नगरें रही उमर ठनगरें आव्या तिहां उपकेश गछि वि वंदणिक विरुद श्री सिद्ध सुरी आचार्य वंशी श्री जीव कलसे (लाके केकोजी भट्टारक एहवुं नाम जाणवु)रिं० स० १५८४ वर्षे श्री विजय दान सूरिने वंद्या ॥ सकल सचित त्यागी एकात उपवास चउ विहार तपना कारक यति धर्मि अभिला याग जांणी श्री विजय-दान सूरिइं अणहिल्ल पाटणि माणिकार पाट कि सं० १५९१ वर्षे गच्छ नायक पद देई स्वपाटि श्री राज विजय सूरी नाम दीधुं । श्री गुरु शिष्य युक्त हिंदु आणि देशी विहार करता

भरदुयानगरें थाप्या । एह वह कोइक रुची शाखाना गीतार्थ प्रति श्रीभीन्नमाल प्रमुख देत्रन इं वदलव जाणी स० १६१३ वर्षे मौरवा नगरइं श्री राजयविजय सूरिनो गच्छ भिन्न हुओ । विक्रम स० १६१९ वर्षे उपाध्याय श्री धर्म सागरजी नइ गच्छ बाहिर की धो । कंद कुदाला नाम ग्रन्थ जल मरण कीधा । तेहनो लिखावरो विस्तार कावा बंध करावी तेहनो मिच्छामि दुकडं दीधा । जैं० सा० सं० खं० १ अ० ३ ॥

उसी समय का प्राचीन लेख मेरे पास भी मौजूद है । सुरु से ही इसमें लिखा है कि तपागच्छीय श्री विजयदान सुरि शिष्य धर्मसागर उपाध्याय श्री खरतरगच्छीय सुविहित साधुवर्ग ऊपर द्वेष बुद्धि धरत थकें, वीस बोल खूरा सुविरुद्ध प्ररुप्या । और विण श्री अभयदेव सूरि परपरादिकनी मन कल्पित प्ररुपणा कीधी । जे एहवा आचार्य खरतरगच्छ में न थया, इत्यादि ॥

असबध वचन भाष्या, तिवारे सं १६१७ कार्त्तिक शु० ७ दिने शुक्रवारे श्रीपाटण नगरे श्री खरतरगच्छ नायक परम संवेगी, परम वैरागी युग प्रधान, गुरु श्री जिनचंद्रसूरी समस्त दर्शनी एक ठाकरी शास्त्र कढाव्या । तिवारे सर्व गच्छीय गीतार्थे मिली घणा ग्रंथ जोई, धर्म सागर ने तेडाव्यापच्छे छपी" रह्यो न आव्यो तिवारे कार्त्तिक शु० १२ दिने सर्व दर्शनी मिली चर्चायें खोटो जाणीने, निह्नव थाप्यो । जिन दर्शन

थी बाहिर कीधो शुद्ध मार्गी तपागच्छीय गीतार्थे पण निह्नव जाणी तेहनो वचन प्रमाण न कियो इत्यादि ॥ ३० बातों के समाधान सहित ९ पानों में बडा लंबा चौडा लेख है संगठन के जमाने में गयी गुजरी बातों का उल्लेख करना ठीक न समझ कर छोड़ते हैं। बूझी आग को प्रज्वलित करना यह ज्ञान सुन्दर जैसे दुष्ट जनों का काम है। इस धर्म सागर के अनुयाईयोंने अपने गच्छ नायक श्री विजयसेन सूरिजी महाराज को भी जहर देकर मारा था। ज्ञान सुंदर भाई विचार करो कि, जिन्होंने अपने गुरु का भी जीवन नष्ट किया वह खरतर गच्छ को नष्ट क्यों नहीं करेगा। सर्व ही सागर तपागच्छ से बाहर किये हुए हैं, इन्हों के सब ही ग्रन्थ असत्य ठहरा कर पानी में गाले हुए हैं। ज्ञान सुन्दर भाई एतिहासिक रास संग्रह भा० ४ संपूर्ण देखे अगर धर्म सागरजी के पहिले का प्रमाण हो तो पेस करें।

जै० जा० नि० पृ० १४ पर संघशतक वृहद्वृत्ति आदि झूठा ही नाम लिख कर महा मिथ्या दृष्टी ज्ञान सुन्दर जैनाचार्य श्री जिनदत्तसूरिजी पर मिथ्या कलंकारोपण करता हुआ लिखता है कि जिनदत्तसूरि को कोई भी प्रश्नादिक पूछते थे तब सूरिजी बडी मगरूरी (मिथ्या घमंड) और खराई के साथ उत्तर दिया करते थे। जबसे लोक खरतरा २ कहने लगे इत्यादि प्रमाणों से यतियों का १०८० लिखना

बिलकुल मिथ्या है । समीक्षा ज्ञानसुन्दर भाई का दुष्ट अभिप्राय यह है कि जिनदत्त सूरिजी बड़े घमंडी और क्रोधी थे, बस उन्हीं से खरतर गच्छ निकला है। जिनदत्तसूरिजी के पहिले संसार में कहीं खरतर नाम का कोई गच्छ ही नहीं था इस लेख से भी ज्ञान. भाईने अपनी नालायकता प्रगट की है । जब तपा आदि सबही गच्छ वाले खरतरगच्छ को सं० १०८० में श्री जिनेश्वर सुरी से प्रसिद्ध लिख चुके हैं तो निर्बोध ज्ञान० की कुयुक्तियों को कौन साक्षर मनुष्य स्वीकार कर सकता है राजा वलियों के समान गुरु परंपरा देखकर ही निर्पक्ष विद्वान लोक पूर्वाचार्यों के गच्छ का निर्णय कर लेते हैं। ऐसे तो सैंकड़ों प्राचीन धुरंधर आचार्यों ने अपने अनेक ग्रन्थों में अपना गच्छ का नाम लिखना जरुरत न समझ कर छोड़ दिया तो क्या वे भी ज्ञानसुंदरजी के ही समान नुगरे और विना गच्छ के थे। जिनेश्वरसूरिजी ने अपना ही हाथ से अपना खरतर बिरुद्न लिखा इसका मुख्य कारण यह है कि "बड़ा बड़ा ही ना करें बड़ाने बोले बोल। हीरा मुख से ना कहे, लाख हमारा मोल" ॥ १ ॥ क्योंकि खरतर शब्द का अर्थ यह होता है कि अतिशयेन खरा इति खरतरः ॥ अस्तु अब आचार्य श्री जिनेश्वर सूरिजी और अभयदेव सूरिजी के लिये तपागच्छ की पट्टावली में जो लिखा है सो सुनिये। श्री सीरोही नगरे वि० सं० ११९७ वर्षे विज्जापान सगोत्रि चहुं आण श्री

पृथ्वीराज हुओ श्री मुनि चन्द्रसूरि इं पाव्यो सूत्र ग्रन्थ निप-जाव्या एहवे इ वि० सं० ११८८ वर्षे श्री अभयदेव सूरि प्रगट हूआ श्री अभयदव सूरिनी उत्पत्ति कहे इं छ इं । मद, पाट देसे वड सल्लग्रामइं नू अर सग्गो नामि राज पुत्र रहे छे। तिहा काटिक गच्छ खरतर बिरुद धारक श्री जिनेश्वरसूरि विहार करता तिहां आव्या श्री सूरिनइं देखी सिघो (सग्गा) नम्यो श्री गुरुइ भव्यात्मा जाणि उपदेश कह्या। सामली सग्गो बुझया तत्काल दीक्षा लीधी जोग्य जाणी आचार्य पद दइ श्री अभयदेवसूरि नाम दीधा। अत्युग्र तपपद् विगयना त्याग थकी पूर्व कर्म्म तुमारे देही कुष्ठ हुओ श्री सूरि पूर्वो पार्जित कर्म्म अहिय मता थका गुज्जरात देशि माणपुर गामे आव्या। वड वृक्ष हेटालि रात्री सुता सुप्नमां तपलब्धि थकी आधीनिमाइ शासन देवी आवी कहइ रुषीश्वर जाग्रत छा। ते देव वाणी सामली सूरी कहे रोग ग्रस्त नइं निद्राकी हांथ की। एहवी आचार्य नी वाणी सामली शासन देवीइं बालिका स्वरूप धरी आवीनइ आचार्य नइं जिमणे हाथें सूत्रनाकोकड़ा नव दई आ० कहइं मुझ देही समाधी हुइ उवेली स्युं। तेसा मली थी सरस्वती कहइ सेढी नदी ने कठइं पालास वृच हेठइं चीकणी भूमि का छे। तेअहिनाणइं पहिला श्री नागार्ज्जुन योगीइं विद्या सिद्धइं भूमंडारिततबिंव श्री थंभणपार्श्वनो स महिम्नछइ तिहा तुमें जाज्यो। श्री थंभणपार्श्वनी स्तुती करज्यो। कीर्त्तना करता

ते बिंब मध्य प्रगट हुमइं तेहनास्नात्र ने जलइं सकल रोग एदेह थकी जास्ये । पिण कोकड़ा नव तुम्ह उवेल ज्यो । इम काहि'न्था श्री शारदा स्व स्थान कइ गया तेहना वचन ने अनुमारे गोदुग्ध चीकणी भूमिनइं अहिनाणइ खाखर वृक्ष हठली जाई श्री अभय देवाचार्य उभार ही श्रीथमण पामनी कीर्त्ति तदूणी जयतिहुअण बत्रशाइं फाणिफण फार फुरं तरयण १७ मुं काव्य कहिता श्री पार्श्व बिंब भूमि का थकी तत्काल प्रगट हुओ । श्री संघइ स्नात्र ओच्छव बह श्री पार्श्वना अभिषेकनओ जल सूची पात्रइ भरी गृ'स्थः श्री आचार्यनी देहा नइं छाट नइं करी गुरुना अंगथ की सकल रोग उपद्रव नाम्या । दह तम सुवर्णोपम हुई । महोछ व मगल जय शब्द हुओ । तिणहिज ठिकाणइ सढी नदी नइ तटि थमण पुरना मइं नाम थाप्या प्रासाद नीपजावी स. ११९९ वर्षि श्री अभय देव सुरी नइ हाथइं थमण पुर प्रासादि श्री पामजी थाप्या तिहाथकी विहार करता श्री अणहिल्ल पाटणि श्री पंचाश्व पाम ने जुहारी तिहा चौमासि रहा तिहार हिनाथ का एकदा गुरुने शासन देव्यादत्त न व शूत्रना कोकड़ानौं उपयोग आव्यो । तिवारइं श्री सुरिइं सं० ११२० वर्षि भगवती प्रमुख नव अंग सूत्रना जे सिद्धान्त तेहनी टिकानी पजावी । एहनइं श्री थंभण पाम प्रगट कार सं ११४५ वर्षे श्री गोप (गवालेर) नगरे स्वाचार्य श्री अभयदेव सुरी स्वर्ग हुआ । तेह पछी केतलेक वर्षो गुर्ज्जर देसी चवनराज हुओ तिवारइं

श्री सकल संघि मिली सप्रभाव बिंब जाणी सं० १३६२ वर्षे श्री खंभायत नगरे सु ठीकाणों घणें यत्ने श्री थंभण पार्श्व थाप्या । नीलुत्पाल समान नीलवर्णदेह धारक सकल क्षुद्रोपद्रव वारक तेबिंब आज लगाणि स प्रभाव छे ॥ इति आचार्य श्री अभयदेव सूरि संबध ॥ जै० साहि० सं ० खं १ अक ३। ज्ञान सुन्दर भाई हिन्दी विश्वकोष देखें, लिखा है कि अभय देव सूरि वृहत्खरतर गच्छ के ४१ वें पट्टाचार्य थे। इनके पिता का प्रेमदेव और माता का नाम धन देवी रहा । इन्होंने धारा नगर में जन्म लिया और तृतिय से एकादश तक जैनागमों की टीका एँ लिखी थी। वि० को भा० १ पृ० ७४३ श्री जिनेश्वरसूरी के लिये सो धर्म वृहत्तपागच्छीय श्री राजेन्द्र सूरिजी लिखते हैं कि जिनेश्वर सूरि न पुं० श्री वर्द्धमान सूरि शिष्य अभयदेव सूरी गुरो स्वनामाख्यात आचार्ये, एतस्मादेवाऽऽचार्यात् खरतर गच्छः प्रवृत्तः । अयमाचार्यो वैक्रमीये १०८० वर्षे विद्यमान आसीत् । एतेन जावालपुर मूपित्वा हारी भाद्राष्टकटी का पंचालिगी प्रकरण, वीर चरित्र, लीलावती कथा, रत्न को श्राश्रैत्यादि का अनेक ग्रन्था रचिता. अभिधान राजेन्द्र भा० ४ पृ० १५०८ । इत्यादि अनेक प्रमाणों के होते हुए भी खरतर गच्छीय ग्रंथों को असत्य कह कर विद्रोह फैलाना, यह ज्ञानसुन्दरभाई की कितनी बड़ी मूर्खता है। महाजन वंश मुक्तावली में रामलालजी ने लिखा था कि सं० १०२६ में वर्द्धमान सूरि

५०० शिष्यों परिवार सहित दिल्ली पधारे उस समय वहां के राजा सोनीगर चौहान का पुत्र व्यादित्य कुमार बगीच में सर्प के काटने पर अचेत पडा हुआ था। राजाने गुरु के पास आकर बड़ी नम्रता से वीनती करी कि 'हे सन्त महापुरुष आप का दया धर्म सफल हो किसी तरह मेरा सुत सचेत हो जाय तो मैं और मेरा सर्व परिवार आप के उपकार से सदा आभारी रहेंगे और इस पुत्र की सन्तान जहा तक सूर्य चन्द्र इस पृथ्वी पर उद्योत करते रहेंगे वहा तक आपके सतानों के चरणों की सेवा करते रहेंगे, निदान सपरिवार राजा के जैन धर्म पालने की प्रतिज्ञा लेने पर आचार्य महाराजने दृष्टि पास कर कुमर को सचेत किया। सर्व लोको में परम आनन्द हुआ। गुरू महाराज को महोत्सव पूर्वक नगर में लाया और व्याख्यान सुन राजा ने सपरिवार सम्यक्त्व पूर्वक १२ व्रत लिये। विषमयी मूर्च्छितावस्था से गुरु महाराज ने राजकोमार को सचेत कियाथा। अत उन्हीं की ओलाद वाले ओसवाल सचेती व संचेती कहाये। इस गौत्र में थोडे वर्षों पहिले सेठ वृद्धिचन्दजी सेंधिया सरकार के खजांची थे, जिनके पुत्र गुलाबचन्दजी ने फलवर्द्धी पार्श्वनाथ मन्दिर के चारों ओर गढ़ बणवाया, इन्हीं के पुत्र हीराचन्दजी अजमेर में महा श्रीमन्त धर्मशील देवगुरु के परम भक्त है। इत्यादि प्राचीन ख्यात को असत्य ठहराने के लिये अनेक प्रलाप करते हुए ज्ञानसुन्दरजी जैं० जा०'नि० पृ० १७

पर लिखते हैं कि " न तो दिल्ली में उस समय चौहानों का राज था, न उस समय चौहानों के साथ सोनीगरों की उपाधि थी, न उस समय वर्द्धमान सुरिका होना साबित होता है "
समीक्षा—आधुनिक पंडितों के एकाध लेख को ही देख कर, विद्वान यतियों के प्राचीन इतिहास को असत्य समझ लेना, यह ज्ञानसुंदर जैसे मूर्खों का ही काम है। खैर ज्ञानसुंदर भाई अब भी तपागच्छ वृद्ध पट्टावली देखें, उसमें लिखा है कि ३० तत्पट्टे श्री वीर प्रभसूरि। एहवइं वि० सं० ९२९ वर्षे दिल्ली ई चहूआणे हुआ। तुं अरनें दिल्ली थकी चहूआणें काढ्या। पुन वि० सं० ९५२ वर्षे श्री नाडोल नगरे श्री नेमि बिंबसूरिइ प्रतिष्ठ्यों। एहवें अवसरें दंडनायक श्री विमल प्रगट हुओ। जै० सा० सं० खं० १ अं० ३॥ प्राचीन इतिहासों में लेख है कि पार्श्वनाथ के समय में उत्पन्न हुए चौहान कुल ने समस्त भारतवर्ष में अपनी प्रबल प्रभुताका विस्तार किया था। चौहानजी के ३७ वें पट्टधर सहदेवजी से दिल्ली छूटी। देखो पृथ्वीराज रासो १० १ पृ० ५७॥ पृथ्वीराज के भी पहिले १२ घराणों में दिल्ली का राज्य रह चुका है ज्ञा० अपना माना हुआ नं० ८ टा० रा० भूमिका भा० १ देखें। वि० सं० १३२६ के पहिले सोनिगरों की नास्ति बताने वाले ज्ञानसुदरजी को जैसलमेर की तवारीख सं० १९४८ अजमेर की छपी देखना चाहिए। पृ० १७ में लिखा है कि १०७ राव

केहर सं० ८१६ मरोट गद्दी बैठे, राणी ४ सोनगिरीजी १ झाली २ पुंवारी ३ शीलखणी ४ पाटवी कुमर, तिणूजी हुआ। उठे कुं० जाम के वंश का जाणिया भाटिया हुआ। जै० त० पृ १७ प० १४ ऐसे ही पृ० २१ पर ११० वांपट्ट धर महारावल श्री सिद्ध देवराजजी सं० ६०० गढ़ देरावर, राणीया १६ जिनों में १६ वीं,राणी सोनगरी राव धूनड़ की बेटी लिखा है। फिर पृ० २३ देखो महारावल सिद्ध देवराजजी व सबलसिंहजी ने गढ़ जालोर सोनेगिरों को, देरावर भांनजे दहियों को मंडोर पडिहारों को दिया। और नवकोटी मारवाड़ में आणफेरी, दुंजागढ़ लुद्रवां, पुगल, सातलमेर, फिरोहर, भटनेर, बीजणोट, मुमणवाहण, मरोट, किराड़, पाटकर, राहडी. मक्खर, वगेरे खालमे लिखे हैं। जै० त० पृ० २३ प० ४। तो फिर कौन मूर्ख कहता है कि सं० १०२६ में चौहानों के साथ सोनिगिरों की उपाधी न थी। ज्ञानसुदर माई पृथ्वीराज रासो देखें ४० वां समय में लिखा हैं कि पाटन का राजा भीमदेव अजमेर के राजा सोमेश्वर को मार कर सोनिगेरा के किले में जाकर सुख से रहा। पृ० ११५४। तो फिर पृ० १६ पर लिखा हुआ तुमारा मिथ्या प्रलाप कौन मानेगा। सं० १२३६ के बाद में सोनागिरी पहाड़ पर किल्ला को बनाना और उसके भी बाद में सोनागरी जाति का होना लिख कर मूर्ख ज्ञानसुंदर ने इतिहास का गला घोटा है। सौनगिरा जाति चौहानों में

हूए जैन मंदिरों में जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिष्टा करने वाले श्री वर्द्धमानसरी का सं१०२६ मेंहोना असंभव कोई नहीं कह सकता एंव चौहानो के साथ सोनगरो विशेषण भी वर्द्धमानसूरीजी के पहिले ही से था। ज्ञा० अपने माने हुये ग्रथों में न० ८ टाड राजस्थान हिन्दी अनुवाद द्वि खं० अ ३ अच्छी तरह म देखे वि० सं० ८६८ में विद्यमान चीतोडाधीश खुमानराय की मदत में म्लेच्छों से लड़ने के लिये भारत के जो २ आर्य राज महाराजे आऐ उन्हों की संक्षिप्त सूची निम्न लिखत है गजनी से गिहलोट आये। असरि के टाक। नादोल के चोहान, राहिर के चालुक, सेत वंदर के जीर केड़ा, मडोर के खेरावी मागरोल के मछवाना (मीना) जेतगढ के जोडिय तारगढ के खेड, नरवड़ के मछवा (मीना) सचोर के कालम जूनागढ के जादव अजमेर के गौड, लौदरगढ के चान्दा, कसौदी के डांडर, दिल्ली के तुवर, पाटन के चांवडा जालोर के सौनगढ, शिरोही के देवरे, गागरोन के खींची, पाटरी के भाला जैनगढ के दुमाना, कनोज के राठोर छोटियाला के वल्ल, परिनगढ के गोहिल, जैसलमेर के भाटी, लाहोर के बूमा (मीना) रौनिजा के सांकला, खेरली के शिरहट, मंडलगढ के निकुंप, गजोड़ के बड गूजर, सीकर के सीकरवार, उमरगढ के जेतवा, पाल्ली के चार गोते, खुनतरगढ के जागीजा, जीरा गांव के खरवड़ आये पृ० १११ अन्यमतावलंबी गृहस्थों की गप्पों के आधार महा

उन वंश मुक्तावली की असत्य समालोचना कर ज्ञानसुन्दरजी ने अपनी हार्दिक दुष्टता प्रगट की है। जैन इतिहास के समान जैन शास्त्र और वीर शासन को भी यह मूढ झूठा समझता है। तभी तो पार्श्वनाथ और रत्नप्रभसूरि के नाम से जुदी खीचडी पकाई जाती है कमला गच्छ अपना इसलिये बताता है कि उसमें अपनी पोल खोलने वाला अब कोई साधु नहीं रहा। संचेती वगेरह सर्व ओसवाल तथा श्रीमाल और पोरवाडों को अपना गच्छ में इसलिये बताता है कि वह लोग इसको अपना गुरु मान कर अपनी बहु बेटियों को इसके पास भेजते। कुकर्मों को छुपाते और हजारों रुपये ठगाते रहे परन्तु सभी जैन मूर्ख नहीं है। जो समझदार होते हैं व प्राचीन निरपक्ष लेखों को देख कर सत्या सत्य का निर्णय करलेते हैं। इस जैन जाति निर्णय नामक पुस्तक में ज्ञानसुन्दर भाई ने एक भी प्रमाण ऐसा नहीं दिया कि प्राचीन ग्रन्थों में जिस का कहीं नाम निशान हो, आप लिखते हैं " कि वीरात् ७० वर्षे ओशिया नगर में आचार्य रत्नप्रभसूरी ने १८ गौत्र में १० वा गौत्र संचेती स्थापन किया। संचेती गौत्र की वंशावली आज तक उपकेश कमला गच्छी लिखते आते है जहां पर कमलागच्छाचार्यों का विहार न हुआ वहां कितनेक संचेती क्रिया तपा खरतरा ढूंढिया, तेरापंथियों करने लग गये हैं। इनसे उन जाति का मूल गच्छ बदल नहीं सकता संचेतियों का मूल गच्छ तो कमला गच्छ ही है। यतियों की गप्पों

पर कोई सचेती विश्वास न करेगा" जैन. जा. नि. पृ० १७॥ समीक्षा जैन यति संगृहीत प्राचीन इतिहासों को तो ज्ञानसुदरजी गप्पो ठहराते हैं और अपनी कल्पित बातों पर झूठा विश्वास देकर भद्रिक जैनों की खरतर समाचारी छोडाते हैं। ज्ञानसुन्दर भाई की यह कितनी बडी भारी जबरदस्ती है। अनेक विद्वानो ने निश्चय कर लिख दिया है कि ओसवाल जैन वणिगें विक्रम की दशमी शताब्दी में बने हुए हैं। इसमे पहिले ओसवाल महाजनों का कहीं पता नहीं वीर ७० वर्ष तथा २२२ की सब बातें निर्मूल है विक्रम से ४०० वर्ष पहिले जैन धर्म में यदि कोई ऐसा प्रभाविक आचार्य हुआ होता तो जैन शास्त्रों में उसका नाम आये विना कभी नही रहता था शास्त्रकार जैनाचार्य ऐसा कृतघ्न नहीं है कि एकैक नगर में लाखों मनुष्यों को जैन बनाने वाले परमोपकारी ४ ज्ञान १४ पूर्वधारी धर्मगुरु का नाम तक न लें। पं० राधावल्लभ धीसुलाल लिखते हैं कि विक्रम से ४०० वर्ष पूर्व तथा २२२ वर्ष पश्चात् दोनों ही गलत है। मान लिया जाय कि श्री महावीर के ७० वर्ष बाद आचार्य रत्नप्रभ सुरि ने ओसिया नगरी उस समय का प्रचलित नाम (उपकेश) पटन में ३८४००० घरों को जैनधर्म धारण कराया, तो निम्न लिखत सवाल उठते हैं:—

(१) जब ओसियां का उन दिनों का नाम उपकेशा पट्टन था तो उस नगर के रहने वालों का नाम उपकेशवाल आदि

न पडकर ओसवाल क्यों पडा ? ओसवाल शब्द तो ओसियवाल का अपभ्रंश है। (२) इतिहासज्ञों के मतानुसार जैन धर्म के दो विभाग (श्वेताम्बर और दिगम्बर) लगभग वि० पहली शताब्दी के बाद हुए थे फिर क्या कारण है कि ओसवाल सिर्फ श्वेताम्बर मत वाले ही पाए जाते हैं दिगम्बरमत वाले नहीं ? जब कि ओसवाल पहिले बन चुके और जैनमत के दो विभाग बाद में हुए तो यह मुमकिन नहीं कि ३८४००० घरों की संतान सब की सब श्वेताम्बर ही रही हों। अनुमान से सच बात तो यह जचेती है कि यह ओसवाल जाति लगभग १० वीं शताब्दी के बाद बनी। ओसिया नगरी तथा ओसवाल शब्द ज्यादा पुराना नहीं है। इतिहासज्ञों के मतानुसार यह जाति स्वामी शंकराचार्य के बाद में बनी और जैनमत के दो विभाग हुए के भी मुद्दत बाद में बनी है। इससे यह न समझना कि ओसवाल होने के पहिले जैनमत था ही नहीं, या जैनमत के आरम्भ होते ही ओसवाल जाति बन गई। जैनमत तो पुराना ही है इससे हमें कोई वहम नहीं—हमारा कथन तो सिर्फ यह ही है कि ओसवाल जाति जब शंकराचार्यजी के वैदिक धर्म प्रचार से अन्य मत धर्म लोप से हो गये थे उसके बाद में बनी है ऐसा दा. ग. पृ ३४-३५। उ० रामलालजी गणि लिखते हैं कि जैन धर्म में श्वेताम्बर, दिगम्बराचार्यों के रचे लाखों ग्रंथ हैं। किसी ने भी १८ गोत्रस्थापक रत्नप्रभसूरि का नाम निशान

तक नहीं लिखा है, नास्ति मूल कुतो शाखा । अस. नि. पृ. ६ तुमने ३ लाख ८४ हजार श्रेणियां में ओसवालों का होना किस प्रमाण से लिख डाला । असत्याक्षेप नि. पृ. ३१। सत्य वारता तो यह है कि खरतरादिगच्छ के वा और गच्छ के महान् आचार्यों ने ओसवाल जाति बनाई है। शंकराचार्य के जुल्म गुजरने के पीछे विक्रम के नौसो (९००) वर्ष व्यतीत होने के पीछे शिला लेख, मूर्ति लेखों में ओसवाल जाति का नाम लिखा पाया जाता है । इस समय उपकेश वा कमलागच्छ में कोई रत्नप्रभसुरि आचार्य नहीं हुआ । असत्याक्षेप नि पृ. ६ ।

कमलागच्छ के महात्माओं के सचेतियों की वंशावली लिखने मात्र से भी संचेति कमलागच्छ में नहीं हो सकते कारण—अपनी आजीविकार्थ सभी जातियों की वंशावली महात्मा (मथेरण) सेवक, जागा, भाट पुरोहित, चारण विगेरह लोग लिखते रहते हैं अपनी पोथी वृत्ति आदि को गिरवी रखते, और एक दूसरे को बेच भी देते हैं । भंगण जातियों की नजीरें देकर ज्ञानसुंदर ने अपनी हंसी करवाई है । मूर्ख ज्ञान सुन्दर को पूर्वा पर विरोध का भी ख्याल नहीं रहता । यहां तो लिखता है कि कमलागच्छ वालों का जहां पर विहार नहीं हुआ वहां के संचेति तपाखरतरादि हो गये । और पृ० १८ वें पर लिखता है कि—उस समय उपकेश (कमला)

च्छ के हजारों त्यागी वैरागी मुनि भूमडल पर विहार करते थे। भला ऐसा कभी होसकता है कि संचेति श्रावक त्यागी वैरागी और अपने उपगारी गुरुओं की समाचारी छोड़ कर दूसरों के गच्छ में चले जावें। दर असल में ज्ञानसुन्दर का लिखना ही सदा मिथ्या है बिना पूर्ण सबूति के कागज काले करनां मूर्खों का काम है। ज्ञानसुंदर भाई को यदि सत्य की खोज करनी हो तो बीकानेर में बड़े उपासरे का प्राचीन भंडार देखें। श्री पूज्यों के पुराणे दफ्तर में लिखा हुआ लेख ज्यों का त्यों यह है। अथ संचिति गोत्र उत्पत्ति लिख्यते।

प्रथम उत्पति चाहुआण राज कुली छे। चहुआणारी उत्पत्ती वर्णनं। भंव प्रचड चार मुख, रक्तवर्ण चतुरंग। अनल कुंडे उपज्यो। अवश्य ब्रह्मारे प्रसग ॥१॥ हि वे चहु आणारी २४ खाप १ हाडा, देवड़ा, सोनगरा, मालडीचा, खींची, नीहल, उदणेचा, बेडा, बालोत, चीबा, काबा, केभट, मेलवाल मालीचा, मान्हण, पावेचा, कांबलेचा, रापडिया, दुदणेचा, नाहर, ईबरा, राकसिया, बाघोडा, साचोरा, २४। श्लो० आकाशे तार का सख्या तृणा संख्या महितले गंगायां बालु का संख्या। चहुआण संख्या न विद्यते ॥१॥ सोनगरा चहुआंण थी सचिती गोत्र थपाणो .. .. राजा धर्मसु मिल्यो। कवितः-संवत् दश आंवीसमा मास बैशाख सवाई। गुरु

पुष्प नोमी संयोग कुमरजीवत देखाई, मद्य मांसहु छोर श्रावक कुलवट गही सारी । वोहिथ कुमरसजी गुरु वचन एहु मन धारी। श्री वर्द्धमानसुरि आखे वचन संचिति गोत्रज थप्पियो । खरतर गच्छ रह जो तुमें । यह वचन मुनि जप्पियो ॥ १ ॥ वोहिथ जोड़ई हाथ सुगुरु आगें हितकारी फरमाश्रो पुज आजतिके सहु करु संभारी । अवरदेव सहु छोर मत्र नवकार ही जप्पो। यह चालो कुलरीति गोत्र संचिती थप्पो । माता सचाय मानों तुमें । अवरदेव मत मानजो । कुलरी वृद्धि थासमे अधिक। यह रीति सत्य जाण जो ॥२॥ संवत् १०२६ वैशाख सुद ९ नोमी गुरुवारे पुष्प नक्षत्रे संचिति गोत्र थाप्यो। गोत्र जाचा मुडा अपर साचि का। गोत्र जारो लाग नालेर १ कपड़ो हाथ १ सुपारी ? घृत सेर १ लापसी सेर १० नीकरणो। नोने वज्ज सुं पूजीजे। वैशाख सुदी ९ गुलटाक २१ आसोज सुदी ९ तिलवट बाकुला खेत्र पालने पूंजीजे । इति पाना १० अपनी अज्ञानता से चाहे संचेती भाई श्री खरतर गच्छकी सुविहीत समचारी छोड़दें परन्तु जो समझदार होगा वह व्यभिचारी ज्ञानसुंदरकी गप्पों पर कभी विश्वास न करेगा । संचेती, चौधरी, गांधी वेगाणी, कोठारी, सोनी, संघवी, आदि ४४ गोत्र के ओसवालों को संचेतियों के भाई (एक बाप की औलाद) लिख कर तो मूढ़ ज्ञानसुदर ने अपना प्रत्यक्ष मृषावादीपना जाहर किया है । कारण-उक्त गोत्रवालों में, सैकड़ों वर्षों से बेटी व्यवहार चला आरहा है।

कल्पित वंशावलीयें रचा कर अज्ञ ओसवालों को पाप मार्ग में लेजाने और जैन संख्या घटा देने के लिये ज्ञानसुंदरजी ने बड़ा भारी धोका दिया है। जिस गौत्र के साथ भाईपा का कुछ भी संबध नहीं था, वहां भाईपा बना दिया। और जहां भाईपा था वहां आपस में सगपण करवादिया है। हमारे पाठक वृन्द जैन जाति नि० द्वितीयांक पृ० ७१ से ७८ तक देखें। क्या कोई समझदार ओसवाल, यतियों की बातों को नहीं मान कर मूर्ख ज्ञानसुंदर की मन घडत बातों का विश्वास करलेगा। अस्तु आगे इसी पृ० १७ पर बरडीया जाति के बाबत उ० रामलालजी के नाम झूटा लेख, बना कर ज्ञानसुन्दर ने जैनों को बड़ा धोका दिया है। मैंने महाजन वंश मुक्तावली की दोनो आवृत्ति अच्छी तरह से आद्योपान्त देखी लेकिन कहीं नहीं पाया कि (सूरिजी ने लक्षमण को धन बता कर तीन पुत्र भी दे दिये। बरडीयों के घर में पुत्री जन्मेगी, वह सुखी न रहेगी। लक्षमण के मकान की भीत स्पर्श करने से हरएक रोग चला जावेगा।) नकल में अकल मिला कर, कागज काला कर डालना यह महा पापियों का ही काम है। खैर आगे पृ० १८ पर ज्ञानसुदरजी लिखते हैं कि-" इतिहास की तरफ देखते हैं तो दोनों यतियों का लेख निर्मूल मिथ्या है। कारण वि० सं० ६५४ में न तो धारा पर राजा भोज का राज था न धारा तुमरों ने छीन ली थी। न उस समय वह

दिया जाति हुई थी। समीक्षाः—ज्ञानसुन्दर भाई ने इतिहास और जैनों की वर्त्तमान दशा की तर्फ यदि देखा होता तो वह मिथ्या बातें लिख कर जैन जातिनिर्णय के नाम से ओसवाल जाति को कभी धोखा नहीं देता। और न महाजन वंश मुक्तावली को झूटी कहकर जैन समाज में विप्लव मचाता। विना गुरु गमके ऐतिहासिक पुस्तकों को देख ज्ञानसुन्दरजी ने कस्तुरी के भरोसे कोयल खाये है निर्बोध ज्ञानसुंदर को इतना भी ज्ञान नही कि प्राचीन आचार्यों ने विक्रम संवत् सनंद और अनद दो प्रकार से माना है। मालव संवत् में से ९१ वर्ष नंद के बाद करदेने पर शुद्ध विक्रम (अनंद) संवत होता है प्राचीन इतिहासकार, कवि और ज्योतिषी लोकों ने इस अनंद संवत् को ही विशेष मान दीया है यथा एकादस से पंचदह, विक्रम साक अनद तिहिरि पुजय पुर हरन को भये प्रिथिराज नरिंद छं ६९४ पृथ्वी रा. रा. आदि पर्व ॥ वर्त्तमान में अनंद की गौणता और सनंद (पूर्ण मालव) संवत की मुख्यता हो गई है। नितान्त अज्ञा विचार ज्ञानसुन्दर की कौन कहे पूर्व कवियों के इस अनंद विक्रम संवत् के न समझने ही के कारण रेउ और ओझादि बडे २ विद्वानों ने भी भूलखाई है। मेरा यह कथन कहां तक सत्य है ज्ञानसुन्दर भाई काशी नागरी प्रचारणी सभा का छपा पृथ्वी राजरा सा पृ० १४० देखे। महाजनवंश मुक्तावली के ९५४ वर्षो में ९१ शामिल करने पर १०४५ होते

है ठीक इसी समय तृतीया भोज धारा के सिंहासन पर बैठे थे। भारत के प्राचीन राजवंश भा० १ पृ० १११ से १२० तक ज्ञा० आँखें खोल कर अच्छी तरह से देखे' राज्यासन पर बैठने के समय भोज १५ वर्ष का था वि० सं० १०६६ में वह महमूद गजनवी से लड़ा था। संवत् १०७६ में वह चोलुक्य जयसिंह से हारा था। ५५ वर्ष ७ मास और तीन दिन उसने राज्य किया'। जैन इतिहासों और यतियों को झूठ ठहराने के के लिये केवल १०६९ ही भोज का समय लिखकर ज्ञा० ने अपनी धूर्त्तता प्रगट की है। खेद है कि ज्ञानसुन्दरजी अपने हाथ में रही हुई पुस्तक को भी नहीं देखते "लिखा है कि मालिन्यतहिं कस्मादनु मवासि, मिलत्क ज्जलैर्मा लवी ना, नेत्राम्भो भिः, किमा सासमजनि, कुपितः" कुन्तलचोणि पाल अर्थात् समुद्र नर्मदा से पूछता है कि तेरा जल काला क्यों है उत्तर में नर्मदा ने कहा - कि कुन्तलेश्वर के हमले से मरे हुए मालवे वालों की स्त्रियों के कज्जल मिश्रित आंसुओं के जलमें मिलने से मेरा जल काला हो गया है। इससे भी सूचित होता है कि उस समय कुन्तल के राजा ने मालवे पर चढ़ाई कर भोज को हराया था। मा० प्रा० वं० भा० १ पृ० ११४ तोमर कुन्तल दोनों शब्दों का एकही अर्थ होता है। संस्कृत का बोध न होने के कारण ज्ञानसुन्दर भाई के पर्याय वाची शब्द समझ में न आये और गुरु बिना गोबर खालिया है खैर अब परादिया जाति का प्राचीन इतिहास देखिये। लेख ज्यों का त्यों यह है।

अथ नर लब्ध गौत्रस्य मूलोत्पत्ति लिख्यते। पूर्व श्री विक्रम संवत्सरात् १०७३ वर्षे भोजराज परमार वंश ज्ञातो श्री सूर्य वंशीय। धांरा नगर्यां स्वर्गलोक नगात्त दातौ मरे बल वत्तैः धारा राज्य गृहीत तदनुभोज वशीयः निहंगपाल, तालण पाल, तेजपाल, तिहूअणपाल, अनंगपाल, पोतपाल, गोपाल, लक्ष्मणपाल, मदनपाल, कुमारपाल, कीर्तिपाल, जयपाल प्रमुखा राजपुत्राः मथुरायां मागता। तस्मादेते माथुराः कथ्यन्ते। किंयद् वर्ष गतेः गोपाल लक्ष्मणपालो द्वौ भ्रातरौ केकइ ग्रामो गतौ सं० ११०२ वर्षे श्री मथुरायां श्री पार्श्वनाथ यात्रार्थ श्री बृहद् गच्छीया नेमीचंद्र सूरय समागता गुरुवस्तीर्थ यात्रा कृत्वा चलितास्ते केकई ग्रामे समागताः। लक्ष्मण पालस्य गृहे व सरयर्थ गतास्तेन स्थापिता माम कल्पं यावद्र स्थिताश्च गुरुवः। परिचया ज्जैन मार्ग शृणवन् जैन धर्मी जातः। कदाचि लक्ष्मणपालेन सूरय पृष्टाः, स्वामिन् कुत्रतीर्थ यात्रा कृतासती महते फलायस्यात्। गुरु° भिरुक्तं। जैनमते चाष्टषष्टी तीर्थानि संति परन्तु सर्वेषा तीर्था नामध्ये शिरोमणि श्री शत्रुजयोस्तितत्र यात्रा कृतासती महत्पुण्या स्यात्। एतद् नगुरो चन श्रुत्वाः स परिवार संसघोलक्ष्मणपालः गुरु भिस्सार्द्ध यात्रा कृतवान्। महा द्रव्य व्ययोकृतः। सघवी पदं गुरुणा सघ समक्ष दत्त। लक्ष्मणसंघवी जात। पुन गुरु भिस्सह मथुरा याम प्यागता कदाचित्तेन

पुनः गुरवो विज्ञप्ता । भगवन् प्रसादादहं, सुलब्ध जन्मा, पुन्यः भाग जातास्मि । परन्तु संतानं नास्तिना, चेतो हृदया शून्योस्ति । गुरुभिः श्रुतज्ञानोपयोगे नोक्तं । भो संघपति लक्ष्मणपाल ! तव गृहे त्रयो पुत्राश्च भविष्यन्ति । ते भ्यस्तव कुल वृद्धि भविष्यति । त्वयाचिन्ता आर्त्तिं माकुथाः इत्युक्त्वा गुरवोऽन्यत्र विहृता । संघवी लक्ष्मणपाला गुरुवचसि सप्रत्ययो मनस्यानंद मुद्वहन् गृहेमतिष्टत्तस्य पुत्रत्रय जात जसोधर नारायण महिचन्द्रश्च । अनुक्रमेण परिणी तास्ते । अन्यदा, नारायणस्यपत्नी गुर्विणी जाता । प्रथमे प्रसवार्थं स्वपितुः गृहेगता । क्रमशः प्रसवकाले ते नैका पुत्री, नागरूपो पुत्रश्च जनितः । तद्दृष्ट्वा संघवी लक्ष्मणपाला द्याश्चर्यिता किमेतदिति इति स्वरूप सर्वान् जनान् पृच्छतिस्म । परंतत् स्वरूप सत्यं न कोपिवक्ति । अस्मिन्नवसरे श्रीनेमीचद्रसूरीणा शिष्या श्री नयनचन्द्र सूरयः समागता । गुरुं भक्त्या सं० लक्ष्मणपालेन वंदयित्वा नागस्वरूपं पृष्टवान् तिना गुरु भूरभिः सूरिभिः शंभयं छेतु नपार्यन्ति गुरु भि क्त, अयंनागजी वस्तत्र भ्राता गोपालस्तस्योपरि जैन धर्मांणी करणेन यात्रा करणेनच तत्र प्रसिद्धि महात्म्य ममसानः आर्त्तं रौद्रध्याना-त्मृत्वा नागरुपो मनुजो जातोस्ति । एतद् गुरु वचः श्रुत्वा सोपि नागरुपधारी मनुजः जाति स्मृति प्राप्य वैरत्यक्तवान् पुनः गुरु भिरुक्तं अयंनागजीर गनडेशे गोत्र स्थापं कोऽनु क्रमशो भविष्यति । गुरवोऽन्यत्र विजहु तज्जुगल यथा पंचत्र-

प्रापत दाह । निशासमयेम -नागः प्रत्यहं चूल्हक पार्श्वेशते । अन्यदाशीतार्तो नागो भवितव्य वशात् कदप्ण रज्ञा मध्ये शयितोऽस्ति । प्रातस्तद् भगिन्यातद व्यति करम जानंत्या चूल्ह के चाग्निप्र चि प्तस्तत्तापेन अहि मृत्वा व्यन्तरोऽ जनि नागरुपेण मव्यन्तरस्त आगत्य भगनी धूरूकृतवान यदाह सव्यन्तरो समितदा संघपति लक्ष्मणपाल गोत्र पुत्र्यान सुविन्यो भविष्यंति । न तथा चेत्तदाशरीरे केचित्सयं भविता । अस्मिन्न नमरे देवो ज्ञात्वा बहवो लोकास्तत्रमिलिता स्तन्मध्यादेकेनाचि त्कटि व्यथावता प्रोक्तं । भोस्त्वं देवोऽस्यदा मे कटिव्यथाम पहर । नागेनश्रुत्वेदं प्रोक्त । मच्छरीर स्पर्शेण तव कटि व्यथा स्याति । तदेव तन्नागशरीरे स्पर्शेण तस्य कटिव्यथा गता । तदा संघपति लक्ष्मण पालेन चिंतितं । नाग शरीरं कियत् कालंस्थास्यति । परमस्या वाचा गह्यते । इति विमृ श्योक्तं भोव्यन्तर यदित्वं नाग जीव सत्य मे तद्वचन प्रवर्त्तते । तदाम त्पौत्रस्त्वं मा पिता मह' किंदास्यसि । देवे सतुष्ठ नाम प्रसिद्धिः । देवात् सं० लक्ष्मणस्य बुद्धिबले नवरंदत्तं । सस्कृते वर लब्धं गोत्रं स्थापितं । पुन' देवेन किंवरदत्त । भो संघपति लक्ष्मणपाल । तवसंतति, कर स्पर्शेण कटि व्यथोपशमं भावी । नागोपद्रवश्चन भविष्यति इति वरंदत्त,इत्यु क्त्वा स्वस्थानं गतो देव तस्मिन् समयेतद् भगिनी धिक्कृता सती हूणा, भ्रातुर्हत्या ममलग्नेति मत्वा, नागपाशेन मृत्वा व्यन्तरी जाता । सापि

तेषां प्रत्यक्षी भूय, भूपाल स्वगोत्रजं नामानंप्रोच्य, स्वां पूजां स्वगोत्र प्रवर्त्तितवती । श्री वरलब्ध गोत्रे भूपाल गोत्रजा आक्षी ग्राम जाता, पूर्वं परमार वंशीय माथुरिया नाम अभीत् । संघवी लखमणस्य भार्यानाम धानी। तस्या पुत्रास्त्रय यशोधर नारायण महिचंद्रश्च पुनः त्रयाणामपि भ्रातृणामेते त्रयोपुत्राः । धनपति दोदाला वृध्द एतेदादा एतणी दूलही सरस्वति एतदादी सप्तप्रतिमा कारापिता प्रग्राह स्फुटिका। पूर्वंतु नागपुरे वास्तव्याः। कालेपातिते सवोदरगिरीगता । पुनः मं० महीचंद्र भा० रुप्पिणी पु० धनपवी जिनदेव नामानौद्वौभ्रातरौ । स्वनगरं गन्तुकामोमार्गे मडवा चलेस्थितो। तत्रकियद्वर्षाणि स्थित्वा के चित्रकूटपुरे समागताः के चित्तत्रैव स्थिता । इतिवरदी यागोत्र उ० लिखित मिदं प० मान धर्म मुनिना स० १३५५ वर्षे श्री रस्तु । पाना नं० ३०॥

हमारे पाठक इस लेख से निश्चय कर सकते है कि किसका लिखना कहा तक सत्य है। ज्ञानसुदर भाई बीकानेर बड़े उपाश्रय के भंडार में जाकर अब भी इस साढे छ सौ वर्षों के पुराने लेख को जरूर देखें । बिना किसी प्रसिद्ध प्रमाण के, प्राचीन इतिहास की, कतल करते म्लेच्छ ज्ञानसुंदर को शरम न आई। जै० जा० नि० प्र०पृ० ७ ज्ञानसुदरजी लिखते हैं कि "यतिजी ने खरतर श्री पूज्यों या बड़े· उपाश्रय का नाम लिख जनता को धोका दिया है । दरियाफत करने पर ज्ञात हुआ कि न तो

ऐसा गप्पों का खज़ाना श्री पूज्यों के पास है। न नहा उपा श्रय में है। सिर्फ उक्त स्थानों को कलंकित करने को ही नाम लिख मारा है। यह कहना भी अति शयोक्ति न होगा कि यतिजी ने जैनों का इतिहास नहीं लिखा पर जैन इतिहास का खून किया है समीक्षा:-धिकार २ पापी तेरी सात पीढ़ी को। जैन यति ही यदि जैन इतिहास का खून कर देंगे तो, फिर जैन धर्म के रक्षक ही संसार में कौन है। ज्ञानसुंदर ने अगर प्राचीन इतिहास की कुछ भी दर्याफ्त की होती तो वह यतियों का इतना तिरस्कार कभीन हीं करता। जैनशास्त्र कहता है कि यति मान्यों यति सेव्या यति पूज्या मनीपिभि। शत्रुंज. म० सच पूछो तो जैन धर्म ही यतियों में है। यतियों ने ही सबही को जैनी बनाये थे। जिस दिन यति न होंगे जैन धर्म उठ जायगा। यतियों से मेरा कुछ लेना नहीं है और न ज्ञानसुंदर पर द्वेप है, मगर सच कहना पड़ता है कि महाजन वश मुक्तावली जैन की जड़ है, इसको काटने वाला जैन धर्म को नष्ट करदेना चाहता है। इसमें ऐसी कोई बात नहीं लिखी गई कि,-किसी के धर्म गच्छ, या दिल पर आघात पहुंचे। दोनों आवृत्तियें मैंने अच्छी तराह से देखी। इसके सभी लेख सप्रमाण सिद्ध है, जिनों को यथा प्रसग स्थान देता रहूंगा। इसके विरुध में किसी प्रमाणिक और प्राचीन ग्रथों के पाठ ज्यों के त्यों, -शिला लेख मय-फोटू न

देकर केवल नाम मात्र से लिख महा मृषावादी ज्ञानसुंदर ने जैन जनता को बड़ा धोका दिया है। पृ० १८ पर आप लिखते हैं कि "वि० सं० ९५४ में धारा पर भोज का राज तो क्या परंतु भोज का जन्म भी नहीं था। और भोज के पीछे तुंवरों का राज भी धारा पर नहीं हुआ था। न जाने यतियों ने नशा के तोर में ऐसा असत्य लेख क्यों लिखा होगा स्यात् रावडियों पर हुकूमत चलानी होगा-कि तुम्हारे पूर्वजों को हमारे आचार्यों ने धन संतान दिया था" समीक्षा–हे पापी तु अपना माना हुआ इतिहास तो जरा आँख खोल कर देख। टाड रा०। ख० १ अ० ६ पृ० ४७ में धारा पर, परमार कुल में भोज नाम के तीन राजा लिखे हैं। पहला भोज वि० सं० ६३१ दूसरा ७२१ और तीसरा ११०० तक। तो फिर कौन मूर्ख कहता है कि उस समय भोज का जन्म ही न था। पढ भाषाओं का बिलकुल ज्ञान न होने ही के कारण मूर्ख ज्ञानसुंदर को महाजन वंश मुक्तावली के शब्द समझ में न आवें। तोंवर तोमर शब्द का अपभ्रम है। जिस का अर्थ भालों से लड़नेवाली क्षत्रिय जाति विशेष होता है। प्रमाण यह पहले लिख तो चुका कि—तोमरैः कुल-वत्तैः धाराराज्य गृहीतं। श्री० द०। कुपित॰ कुन्तलचोथि-पालः। भा० प्रा० रा०। जैन धर्म में सामान्य गृहस्थ को भी भाग, तमाखु, गांजा, चर्श, मद्य, माजुम, आदि सर्व नशे

मात्र की शख्त मना है। तो फिर जैन यतियों को नशेबाज लिख कर हीलना करना यह ज्ञानसुंदर की नालायकता नहीं तो और क्या है। हमारे जैनाचार्य न धन रखते थे और न संतान पैदा करते थे, उन्हों को धन संतान के देने वाले लिख कर नालायक ज्ञानसुंदर ने अपनी हार्दिक दुष्टता प्रगट की है। व्यभिचारी ज्ञानसुंदर को मालुम नहीं कि त्यागी महात्माओं की शुभा शीष मात्र से ही आस्तिकजनों की मनो कामनाएं पूर्ण होजाती है। आगे पृ० १९ पर ज्ञानसुंदर लिखता है "नगर के लोगों का अहोभाग्य है कि लक्ष्मण की भींतही उनके लिये हकीम बनगई"। न जाने बिचारे वैद्य हकीमों का क्या हाल हुआ होगा। दरसल नरडियां जाति नागपुरियां तपागच्छ के श्रावक है। समी:—नास्तिक ज्ञा० को मालुम नहीं कि देव शक्ति में अचिंत्य प्रभाव होता है। एक भींत ही क्या वह कहो जिस चीज को छुआ कर शारीरिक सब रोगों को मिटा सकते हैं। शान्त मूर्ति जैन गृहस्थों के आश्रम के पास रहने पर भी प्राणी मात्र के त्रिताप अवश्य मिट जाते हैं। भींत हकीम क्या होगी यह एक प्रकार का टोटका है। मैंने खुद देखा है कि बीकानेर में जिस किसी के कमर में चणक चली जाती है तो वह सक्स सोभागमलजी बरडियां के पास सुभके से आजाते है तब वह उसकी कमर में लात या मुक्की जमा देता है तो उसी दम आराम होजाने के

ारण वह हंसता हुआ चला जाता है। अगर कोई बरडिया ावक न मिले तो उन्होंके घर की दीवार पर जोर से अपनी कमर पिछाटने से भी जरूर चणक मिटजाती है। ज्ञानसुंदर ाई बीकानेर जाकर जरूर इसकी तहकीकात करलें। प्रत्यक्ष ा प्रमाणातर देने की कोई जरूरत नहीं रहती। जब खरतर च्छ के श्रावकों में भी इतनी आत्मिक शक्ति है तो फिर न्होंके धर्म गुरुओं में कितनी बड़ी शक्ति होगी। ज्ञानसुंदर ाई विचारें।

उन्हों की हालत पर खेद प्रगट करते हुए ज्ञानसुन्दरजी ैंध हकिमों का तो भला चाहता है। और बरडियों की गुरु ाम्राय गत समाचारी छोड़ा कर खरतरगच्छ को नष्ट करना ाहते हैं। यह दया कैसी। पृ० १९ पर आप लिखते हैं कि ागपुरिया तपागच्छ का श्रावक पुनड श्रेष्ठि ने विक्रम की ?२ वीं सदी में सिद्धाचलजी का बड़ा भारी संघ निकाला ा। वहां पर चक्रधरी देवी ने वरदान देने से बरडिया जाति ई है, समीक्षा: खेद है कि मूर्ख ज्ञानसुन्दर को समय का ी बिलकुल ज्ञान नहीं है। अभिधान राजेन्द्र भा० ४ पृ० १३८३ पर लिखा है कि चैत्रवाल गच्छीय श्री देवभद्रसूरि के ास विधी सहित उप सपत ग्रहण कर श्री जगचन्द्रसूरि ने वि० सं० १२८५ में आचामल तप से तपानाम पाया यथा— श्री चैत्र गणाम्भोधौ, विधू पमादेवभद्रगणि मिश्रात्। उप

संपन्नाश्चरणं, विधिना संवेग वेग युताः ॥ आचाम्लाव्ध तपोभिग्रह वन्तो व्यधु र्विधूनमला। शर करटि तराणि (१२८५) वर्षे, ख्यात स्तत इति तपागच्छः । फिर पृ० २१८५ पर लिखा है कि—तपागच्छ पु० घोर तपः कारित्वेन तपाविरुद्ध प्राप्ताज्जगच्चन्द्रसूरिः प्रतिष्ठितं गच्छे तपाइति शब्द स्तपार्थ को देशी प्रसिद्धः तपागच्छ ही जब विक्रम की तेहरवी शताब्दी के भी ८५ वर्ष जाने के बाद में हुआ है तो फिर उसकी शाखा 'नागपूरी तपा' १२ वी शताब्दी में कहा से आगई। बाप के बिना भी क्या बेटा और गुरु के बिना कोई चेला हो सकता है । स्यात् नगुरे ज्ञानसुंदर के ही समान स्वतंत्र नागपुरी तपागच्छ कोई पहेली से अलग हो तो उसका ठीक प्रमाण देना था । इधर उधर की झूटी बातों से कागज का लेकर जनता को धोका देना यह सज्जनों का काम नहीं । सिद्धाचलजी का संघ तो सभी धनिक गृहस्थ निकालते है और उन सब को ही देवी चक्रेश्वरी वरदान देती है तो फिर जैनी मात्र को वरंडिया जाति न होकर अकेले पूंदड की ही क्यों हुई । नागपुरी तपा सहीत ज्ञानसुंदर में यदि सत्यता का कुछ भी अंश हो तो वे खरतर यतियों से पुराणी ठीक सबूती दें, कि जिसको वरडिये लोक मान लें । जमाने के कारण आज कल पवित्र हिन्दू धर्म को भी छोड कर लोक गो भक्षक होते जाते है । मै वरडियों का पल्ला नहीं पकडता कि आप लोग

तर समाचारी न छोड़ें। परन्तु मतलब यह है कि ज्ञान-सुन्दर जैसे धर्म धूर्तों के कहने में आकर वे लोक अपने और दूसरों के उपकारी पुरुषों से बेमुख न हों। खरतर तपा दोनों वृहद्गच्छीय एक है इन्होंको भिन्न समझने वाले ज्ञानसुन्दर जैसे मूढ़ात्माओं की दृष्टि में फर्क है। मूर्ख बणियों को मालूम नहीं कि जैन धर्म केवल "वीतरागावस्था" में ही है। बाकी क्रियाओं में झूठा ही फर्क डाल कर एक दूसरे को झूठा कहने वाला समय का अज्ञाण है। जै० जा० नि० पृ० ६७ ज्ञानसुन्दरजी लिखते हैं कि "क्या यतिजी का यही विश्वास था कि कभी कोई निर्णय करने वाला मिलेगा भी नहीं। खरतरगच्छ की किसी भी प्राचीन पट्टावली या ग्रन्थ में यह नहीं लिखा है कि नेमीचन्द्रसूरि, वर्द्धमानसुरि जिनेश्वर-सुरि जिनवल्लभसुरि ने कोई नया जैनी बनाया हो। समीः —

ज्ञानसुन्दर भाई ने यदि निर्पक्ष भाव से थोडासा भी निर्णय किया होता तो यह कभी नहीं लिखता कि उक्त आचार्यों ने कुछ भी उपकार न किया हो। खैर अब भी खरतरगच्छ के यतियों से शास्त्रार्थ कर निर्णय करलें। नेमीचन्द्रसुरि ने पग-डिया कोचर आदिकों के पूर्वजों को प्रतिबोध कर ओसवालों में मिलाये थे। वर्द्धमानसुरि ने भी अनेक राजपूतों को ज्ञान देकर जैनी बनाये जो इस समय संचेती और लोढादि है। श्रीजिनवल्लभसुरिजी ने भी हजारों राजपूतों को प्रतिबोध

देकर जैनी बनाये जिन्हों के परिवार में आज बागडी, पल्लिवाल
ननवाणा, नवलखा, काकरिया, सिंघी, बाफणा, मणसाली,
सालंकी, हरखावत, ब्रह्मेचा, साहा, लालाणी, याठिया,
कोठारी, घाडीवाल, टाटीया, हूमड, बंठर, बुबूकिया, सांढ,
गाधी, और चोपड़ा आदि है। इस विषय का प्राचीन इतिहास
देखना हो तो ज्ञानसुंदरभाई खरतरगच्छ के श्री पूज्योंसे मिले।
उन्हीं से जैसा देखा मैंने लिखा और फिर भी लिखता रहूंगा
और अपने माने हुए प्रमाणिक ग्रंथों में से (११) जैन मत
प्रबन्ध बुद्धि सागरसूरी कृत भी तो जरा तुम देखो। पृ० २३१
श्री जिनवल्लभसूरिजी के वास्ते लिखा है कि शुद्ध चारित्र इ
पालन करता छता सकल शास्त्रों नुं अभ्यास करीने गीतार्थ
थया। तेओश्रीए चितोड़ नगरनी चंडिकादेवी ने प्रतिबोध
ने जीव हिंसा छोडावी। अने चंडिकादेवी पण तेमना प्रतिभा
वाली बनी ते ओए तेजनगर मां ७२ जिनालय मंदिर श्र
महावीर स्वामी ना देरासरनी प्रतिष्ठा करी। तेमणे पिं
विशुद्धी प्रकरण, शद् शांति प्रकरण, संघपट्टक आदि अने
ग्रन्थो रच्या, तथा दश हजार बागडी (चौहान) लोको
प्रतिबोध आपीने श्रावक बनाव्या। श्री खरतर गच्छी
अचार्यों के बारे में किसी दूसरों की लिखी हुई बात को
ज्ञानसुन्दर भाई नहीं मानता। न मालुम उन्होंने इसका क
बिगाडा है। जिन वल्लभ और जिनदत्तसूरिजी में तो यह दे

ही दोष देखता है। पृ० १६ नंबर रापलालजी के नाम से भूठा ही पुत्र पत्त कर जिनवल्लभसूरि मंडोर आये नानुदे राजा ने गुरु से पुत्र देने की अर्ज करी। सूरिजी ने कहा एक पुत्र हम का दे देना, मैं तुम को पुत्र देता हूं। राजा ने स्वीकार किया। पुत्र होगये जिनदत्तसूरि आए, पुत्र मांगा तो न दिये सूरि के प्रभाव से पुत्र कोढ़िया हो गया। और पृ० २० में समालोचना में दोनों ही यतियों को असत्यवादी ठहरा कर चौपड़े ओसवालों को कुंवलागच्छ में बताया यह सब ज्ञानसुन्दर का मिथ्या प्रलाप है। न तो जैनाचार्यों के पास किसीको देने के लिये पुत्र होते और न वे किसी के पुत्र की अपेक्षा रखते हैं। श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज के प्रभाव से तो हजारों के कोढ चले गये और आस्तिकों के अब भी जाते हैं। जैन यति झूठ नहीं लिखते। अपनी जैन जाति महोदय की बिक्री के लिये जैनधर्म के शत्रु ज्ञानसुन्दर ने इतिहास का नाम देकर जनता को बड़ा धोका दिया है। मिथ्यात्वियों के लेख पर क्या कोई समझदार विश्वास कर सकता है। ज्ञानसुन्दर भाई अब भी तुम बीकानेर जाकर, या उन्हों को अपने पास बुलाकर जरूर तहकीकात करो श्री खरतरगच्छ के श्रीपूज्यजी के प्राचीन दफ्तर में चौपड़ों की ख्यात निम्न लिखित है। अथ चौपड़ारी वंशावली प्रथम आदि ब्रह्म सृष्टी कर्त्ता (लोकमते) हुओ। ब्रह्माने स्वयंभू। स्वयंभूने आदि राजा। आदि राजरे

मरीच । मरीचरो कुणम । कुणमरो कुहूक । कुहूकरो मागी ऋषि मागी ऋषिरो भागीरथ । भागीरथरो सगर । सगररो अजयपाल अजयपालरो मेणचकर । मेणचकररो वच्छराज । वच्छराजरा परम्परा में नाहड़राव हुयो जिणें नाहड मर करायो । नाहडरा पुत्र धवलचन्द्र । मंडोवररो राजकरे तिण समय श्री खरतरगच्छ नायक भट्टारकसूरी जिनवल्लभसूरिजी मडोवर पधारया । श्रावके घणो महोत्सवकरी शहर में आण्या । श्रीफल सघ में दीवा । तिण समय मडोवररो धणी राजा धवलचन्द भट्टारक श्री जिनवल्लभसूरिजी ने करामाती पुरुष जाणी गुरारे पगे लागा । अने कह्या स्वामी तुम परोपगारी छो । म्हारे शरीर में कोढरो रोग छै सो थे दूर करो । तिवारे गुरु बोल्या थे म्हारा जैनधर्मी श्रावक होजावो तो रोग थारो जावके छै । तिवार गुरारा वचन प्रमाण किधो । मैं म्हारो रोग गया जैनधर्म पालस्यु । आगे श्रावक हास्यु । तिवारे गुरु लाभ जाणी सची यादवी आराधी वर लिया । देवी यों कह्यो कुंकुमवर्णी गाय लीज । तेहनो दूध जमावी, माखण काढी शरीरे चोपड़ाज्यो । वले कुलदेवी सचीया थापज्यो । यहनो रोग जासी, वश विस्तार पामसी । इस्यो कहाने देवी अलोप हुई । हवे गुरु राजारे शरीररे कुकड़ी (लाल) गायरो माखण चोपड़ाव्यो तिवारे शरीर पल्लव हुआ । कंचनवर्णी काया हुई । सम्वत् १११२ वर्षे वैशाख शुदी ७ गुरुवारे पुष्य योगे विजय मुहूर्त

राजा धवलचन्द्र गुरांरे पमे लागो। उपगार मोटो जाणी न्याय पान श्रमक्ष रात्री भोजन छोडी श्रावक हुओ। तिवार गुरु कुकुम (कुकुड) चौपड़ा गोत्रनी स्थापना कीधी। जाति ना पड़िहार रजपूत छे। राजा धवलरो वंश विस्तार पामड्यो इण्यां वहां। तिणारे पाट श्री जिनदत्तसूरिजी हुया। सं० ११७० महा प्रभाविक सूरि मंत्रधारी अतिशय धरावाली हुया। चौपड़ा गोत्रे आषाढ सुदी ११ श्री जिनदत्तसूरिजी रापगला थापी कुम्कुम केसर सु पूजवा घृतरो दीवो करवो। सवा मासो रुपो धर्मोपरम पगला मांअमोरसां। इग्यारस रे दिन कातणो न करे। चौपड़ा श्रावक रजद्वार थी जीमणा पासे घर करावे तो वंश लक्ष्मी वधे। पुत्र हुया सचियादेवी न नैवेद्य करे, थाली ९ लापसी सु भरे तिण थाली दीठ लवंग दाडा खाजा नग सात सात मेलणी, थाली १ सवामणी ने देवे, थाली १ कांकेर घर देवे, थाली १ आपरे घरे वेहचे, थाली १ मामेर घर देवे, एव ४ थाली दवे। सुपारी ७ व ४ गेंहू पायली ४ नारेल १ सचियादेवी आगे चाढे सो वहिनरो लागे छे। दीवो अखण्ड राखे, रातीजगो कर, इतरा थोक पुत्र जन्म हुया करे, प्रथम पुत्र हुया चीर मोचूडा पहर, वीहर सु चीर मोचूडो आव तो अटकाव नहीं, दीवोलीयें जुहार लापसी नो करवो, चूडो पहरता पछे पायली १ नी लापसी करणी, नारेल १ वधारणो, यह-कुलदेवीरी पूजा छे, परणता लगनरे पहिले दिन रातरो गोत्र

जारो लोग किया पछी जान चढे, यह रीत सब चोरड़ा गोत्रसी छै। राजा धवलचन्द्ररे चित्रांगद पुत्र हुयो, चित्रांगदरे-राघव, राघवरे-दीपचन्द, दीपचन्द कर्मयोग सुं गहलो हुयो तिणसु राज लोग उमराव प्रधान पुरुष राजरा अधिकारी सर्व दिलगीर रहे है, तिण समय भट्टारक श्री जिनदत्तसूरिजी पधार्या श्रावकें मोटे मोच्छवें मामेलोकरी शहर मांहि लीवा। श्रावक राघवजीयें करामाती पुरुष जाणी श्री जिनदत्तसूरिजी ने राजद्वारे महोत्सव करी तेड्या। ५००० रुपैया निमछणे (न्योछावर) कीधा। और पिण घणी महिमा कीधी। पछे हाथ जोड राजा राघवे अरज करी कि—

स्वामी तुम्हारो पुत्र दीपचन्द गृस्थलछे। थांरो श्रावक छे सो आप सु इज ओ उपगार हुस्य। इणने सज्ज करो। तिवारे लाभ जाणी स० ११७०, अषाढ सुदी ३ रें दिन गुरें दीपचन्दरे ओघो फर्यो। तिण समेंही दीपचन्द साजो हुओ। राजा उमराव सब राजी हुआ। जैन धर्मरी घणी महिमा हुई। दीपचन्दरे जैन धर्मरी घणी आस्ताआई। दीपचन्दरो पुत्र शिवराज। शिवराज पु० त्रिरुप-मधूकर-हमीर-साकर पुनपाल-धनपाल-विक्रमसिंह-मींचो-त्रिहूणो-देवराज। देवराज दीचालीनी॥ इति चोरड़ारी कुलाख्यात पाने ६॥ वादे वादे जायते तत्व। ज्ञानसुन्दर भाई जैन जाति निर्णय के नाम से

अगर-कागज काले न करता तो हमारी चोपड़ा जाति की प्राचीन सत्य कुलख्यात भंडारों में ही पड़ी रहती। इसको ज्यों की त्यों मैंने सर्व साधारण के सामने रखदी यह भी एक बड़ा भारी गुण हुआ। सब ही जातियों के प्राचीन इतिहास की हमारे पास पूर्ण सामग्री प्रस्तुत है। जैन जाति महोदय दीखने पर सब लेख प्रगट किये जायगें। पृ० २० पर अपने विभंग ज्ञान के जोर से ज्ञानसुन्दरजी लिखते हैं कि जिन वल्लभ, जिनदत्त दोनों के समय न तो मडोर में कोई नानुदेव राजा था और न पडिहारो में इदा शाखा का जन्म भी हुआ था। समीक्षाः—

ज्ञानसुन्दरजी को मालुम नहीं कि एक राजकुल की अनेक शाखायें और एक पुरुष के अनेक नाम होते हैं। नानुदेव नागभट नारहड व नाहड एक ही पुरुष के विभिन्न नाम है। देख प्रतिहार बाउक का जोधपुर में शिलालेख प्रा० ले० स० भा० पृ० ७० । मेरी समझ में नाहणदेव का नानुदेव हो गया है। यदि सभ्यता से जैन इतिहास का शुद्धारता तो इसमें ज्ञानसुन्दर की तारीफ थी। परन्तु अज्ञानियों को ऊंधी सुझती है। अस्तु कल्पसूत्र आदि जैन शास्त्रों में पुष्कर का तालाब महावीर स्वामी के समय उदायन राजा का खोदया हुआ लिखा है। परन्तु ज्ञानसुन्दर इस बात को नहीं मानता वह लिखता

धाडीवालों को अपने गच्छ में खींच लेने के लिये उन्हों
सत्य इतिहास को असंभव कह कर ज्ञानसुन्दर भाई ने व्यर्थ
कागज काले कर डाले हैं। अधर्मयुक्त कार्य में मददग
जैनाचार्य तब होते जब कि उन्होंने डिट्ठ को धाडा पाडने
मदद दी होती। श्री जिनवल्लभसूरि ने डीडू को हिंसा
चोरी आदि का त्याग करा के जैनधर्म की विधि से श्रावकप
का आप संक्षेप दिया था। इसमें दोष बताना ज्ञानसुन्दर
धृष्टता है। मुगल बादशाहओं और अनेक राजाओं ने अपन
लाखों फोजों सहित २४ वर्षोंतक घोर परिश्रम किया मग
अकेला परतापसिंह हाथ न आया और वह अगणित सेना
काटता ही रहा, तो क्या वे निर्बल थे। अनेक बादशाहों
बडे २ खजाने जब कि निजामतों से उन्होंकी राज्यधानी
या हिन्दूस्थान से बहार जाते थे तब बारठ राजपूत-जा
वगैरा उन्होंको लूटते थे तो क्या वे बादशाह कमजोर थे
जैन तवारीखों को यदि ज्ञानसुंदर अपनी फूटी आख से
देखता तो उसको मालुम होजाता कि महाराज सिद्धरा
जयसिंह सच्चे जैन थे। दुर्दांत वीर डीडूजी ने आचार्य श्री
जिनवल्लभसूरिजी के पास जैन धर्म स्वीकार कर समस्त
कृत्या का त्याग किया जानकर ही उन्होंने प्रसन्न हो इतन
बडी भारी इनाम उसको दी थी, न कि घबरा कर बीकाने
जाके ज्ञानसुन्दर भाई श्री पूज्यों का प्राचीन दफ्तर देखें

श्री खरतर गच्छाचार्य प्रति बोधक श्रावकों में धाडीवाल ८७-नं० की जाति है और धाडीवाल कोठारी आदि इनकी शाखाये है। जाति अन्यवेपण नामक ग्रन्थ में लिखा है कि धाडीवालो में सबलदास नामक एक राजा कोठारी हुआ था तब से उसके वश की वृद्धि होने से वह वंश कोठारी करके प्रसिद्ध हुआ। (जा० अ० स० स० पृ० ४६२ बीमनगर शांतिनाथजी के मंदिर में रही हुई धातु प्रतिमा के लेख की नकल बुद्धि-सागरसूरिजी देते हैं कि—सं० १५२५ वर्षे मृग शिर शु० १० शुक्र मूडहटा समीपे नोवड़ा सण ग्राम वास्तव्य खाटहड गोत्रे सा० रणसिंह पु० पूजा भार्या हाजू पु० सहजा, सागा। सहजा भा० कोरासुत पना सहितेन श्री कुन्थुनाथ बिंब करित प्र० श्री कोरट तपागच्छे श्री सर्वदेव सूरि भि प० तपोरत्न उपदेश से जैन गच्छ मत प्रबंध पृ० ६१ इससे निश्चय होता है कि—कोरट गच्छ यह तपागच्छ की ही एक शाखा है। इसको कनलागच्छ कह कर लोगों को भ्रमित करना यह ज्ञानसुंदर की बड़ी धूर्तता है। मरे हुए गच्छों को अपना के शा० इष्ठ सिद्धि चाहता है, परतु सिवाय मूर्खों के, ये सिर पैर की बातें, कोई नहीं मान सकता। मिलते हुए नाम तो सबही गच्छों में आते है। जा० पड़िहारों के शिला लेखों को देखे. कक, नाम गृहस्थों में भी आता है। कक, रत्न प्रभ, सिद्ध, और देवगुप्त आदि नाम राजे सभी आचार्यों को

गच्छ में मान लेना यह ज्ञानसुदर की बड़ी मूर्खता है। खैर आगे पृ० २२ पर ज्ञा० लि० कि–" वि० सं० १५७५ में झाबुआ नगरही नहीं था। वह तो ई० १६ वीं शताब्दी में लाभाना जाति के झबूनायक ने बसाया था " समी: १५७५ स० और ई० १६ वीं शताब्दी में विशेष फर्क न होने पर भी जैन यतियों से द्रोह करना जमानों के अनभिज्ञ ज्ञानसुदर की नालायकता है। टांटिया भील का दमन अगर असत्य है तो किस बात का इनाम में राठोंड़ो को बादशाह ने झाबुआ दिया था, खैर आगे पृ० २३ पर ज्ञा० लिखता है कि " दादाजी का स्वर्गवास सं० १२११ में हुआ था। उस समय रावसियाजी तथा आस स्थानजी का जन्म भी नहीं था, तो दादाजी की भक्ति किसने की और भविष्य किसको बतलाया। वि० सं० १२८२ में राव सिहाजी मारवाड़ में आये थे। आसस्थानजी का समय १३३० का है तब दादाजी का स्वर्गवास १२११ का है पाठक सोच सकेंगे कि–यतियों ने किधर की ईंट किधर का पत्थर जोड़ कर ढांचा खड़ा किया है "। समीक्षा –जैन समाज में श्री जिनदत्तसूरिजी भक्तजनों को आज भी प्रत्यच होकर दर्शन देते हैं। जैन यतियों का अभिप्राय नहीं समझ कर उन्होंके इतिहास को झूठा बताना, यह ज्ञानसुंदर की मूर्खता है। सियाजी मारवाड़ में स० १२८२ को आया लिखा सो भी गलत है जरा अपना मान्य इतिहास देखिये–जिस दिन

यवनवीर शहाबुद्दीन के प्रचंड बाहुबल से कन्नोजका राज्यचूर्ण हुआ. जिस दिन स्वदेश द्रोही जयचंद ने गंगाजी के पवित्र जल में गिर कर अपने किये हुए पापों का प्रायश्चित्त किया, उसी दिन से १८ वर्षों के पीछे सं० १२६८ में उसके पौत्र शिवाजी और सेतराम अपनी जन्म भूमि को छोड़ा कर २००। साथियों के साथ मरु भूमि की ओर गये। टॉ० राजस्थान भा० २ अ० २ पृ० १३ श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज सिद्ध पुरुष थे। उन्हीं का दूसरा नाम सोमादित्य (सोमचंद्र) है। टाडसाहब लिखते हैं कि।

वह यवनों के सिन्धु नद पार करने से पूर्व का यति पुरुष था। जिसके धर्म का अधिकार सिंधु नद के पार दूर तक फैला हुआ था। उसका करामाती कपड़ा अभी तक जेसलमेर में मौजूद है। टॉ० रा० भूमिका पृ० २ नोट। अमरधाम गमन होने पर भी समस्त भारतवर्ष में, प्रतिग्राम उन्हीं के चरण पूजे जाते थे। आज भी हिन्दुस्तान में ऐसा कोई प्रसिद्ध नगर न होगा कि जिसमें जिनदत्तसूरिजी के चरणों की स्थापना न हो। कलकत्ता बम्बई जैसे बड़े २ नगरों में प्रति दिन अगणित नरनारी गुरु चरण वंदनार्थ आते है और मनोकामना पाते हैं। रावसियाजी ने भी पाली नगर में सच्चे दिल से गुरुदेव के चरणों की भक्ति की थी।

जिसीमे प्रसन्न होकर शासन देवता सहित सिद्धरूप से गुरु महाराज ने उसको दर्शन दिया और भाविष्य बतलाया था। उसी समय का बना हुआ इन्हीं का संवाद जैन खरतर श्री पूज्यों के प्राचीन दफ्तरों से लेकर यहां ज्यों का त्यों लिखता हू।

अथ श्री जिनदत्तसूरिजी राठोर वंश उजागर पाली नगर वरदत्त ॥ परचो पाली परगडो, ब्राह्मण छों वैताल। छूछमी सुलिच्छमी भई, दुरी एक करत निहाल ॥ १ ॥ गुरु वैताल ब्राह्मण ने परचो दीनो ऋद्ध समृद्ध दे दारिद्र गुमायो। इग्यारे से इकसत्तरे, पाली शहर प्रसिद्ध। मिल्यो सिहो महाराज सो। करी फेरी नमी रिद्ध ॥ २ ॥ दीठो आदित्य ऊगतो, जाणी जलहल जान। करजोडी कीर्ति करे। सिहोसेत-रामोत। ३। अति बडो सिर सेहरो, सहरे सिरंज कोण। परणी जेमारी पृथी। लिखमी वारे लोण। ४ ॥ महाराजा मुख उच्चरे। कहो नाम कुण ठोड। हू सिहो सेतरामरो। जाता सिरे राठोड ॥ ५ ॥ जाऊं किणी राजा कने। खरची द्यो मन खोल। आज्ञा जो आपो सिरे। तो चंचल चढूंज चौल ॥ ६ ॥ श्री गुरु महाराज वाक्य ॥ आज्ञा माहरी आकरी। सूरज भरसी साख। पाली जुं थे पाल्हवो। भुये अनिचलदी भाख ॥ ७ ॥ सिहाजी वाक्यं ॥ अविचल वाचा आपरी।

-अविचल सूरजचंद । अविचल आयु पञ्चरो । अचल इन्द्राणी, इन्द ॥ ८ ॥ श्री गुरुमहाराज वाक्य ॥ सिंहाथारी साहिबी । कीरत करसी कोड । राज घरा लग राजसी । रहसी धूर्ग राठोड़ ॥ ९ ॥ सिंहातूं सुखियोहुमी । दुखियो रहेन कोय । पातक झड पडुर भयो । रह्यादिन करदोय ॥ १० ॥ सिंहाजी वाक्य । अलिकीन मारथ्यो आप नाह । खिस्योन को सुरत्राण । किरण प्रकाश ज्यूंहें जगत में । थे उगतासुविहाण ॥ ११ ॥ धन दिहाड़ो धन घड़ी, धन श्री जिनदत्त सूर । खरतर गुरु सिर मुकुटमणी । फलियो कल्पतरूर ॥ १२ ॥ केसर कुम्कुम पगलिया । अर चोसथ पौसाल । कडा मौड मोति कौडरा । कामराज गज लाख १३ पूजूंमच जग में सिरे । पूजें पूत सुपूत । वायक जिन दत्त सूरिरो । राठौडा मजबूत ॥ १४ ॥ खाटी जिनदत्त सूरी । खादी सिंहमेत । घर वाणीजधूमा धणी । त्याग त्याग समेत ॥ १५ ॥ इति श्री जिनदत्तसूरिजी राठोडा ने परदीनो । पाना ॥ २६ ॥ फलोदी बीकानेर आदि सब ही स्थानों के श्रावक श्रावक आज दिन तक खरतर समाचारी ही पालते हैं । तपागच्छ के साधु और श्रीपूज्य तथा आचार्य खरतरगच्छ की इतनी अदब करते हैं कि—बीकानेर में श्रावकों की गुवाड़ में होकर बाजे बजाते हुए नहीं निकलते अगर श्रावक तपागच्छी है तो यह क्यों बीकानेर के राठोड़ राजाओं ने अन्य सबही गच्छवालों को शक्त मना लिखदी

है कि—वे खरतर गच्छ के श्रावकों की १३ गुवाटों में भगवान् की सवारी के वाहने भी बाजा बजाते हुए निकल कर हमारे धर्म गुरवों को अपमान न करें। खरतरगच्छ वालों को कहीं मना नहीं है। वे समस्त मारवाड में राजभुवन तक बाजे बजवाते चले जा सकते हैं। राजधानी जोधपुर में कुछ नाथो और ब्राह्मणों ने एक समय आपत्ति की थी, जिस पर महाराज सूरजसिंहजी ने उन्हों को गुन्हगार ठहराया और सदा के लिये पट्टा लिख दिया कि जोधपुर रियासत मात्र में कोई भी मनुष्य खरतरगच्छचार्यों की महिमा पूजा में हस्तक्षेप किसी प्रकार न करसकें। परवाने की नकल ज्यों की त्यों यह है॥

0-0 —— श्रीपरमेश्वरेजी खडगमही ॥ स्वस्ती श्री महाराजाधिराज महाराजा श्री सूरजसिंहजी कुंमर श्री गजसिंहजी वचनात् युगप्रधान भट्टारक श्री जिनचंद्र सुरिजी ने मयाकरी दुवोदियो (दवादीयी) जिसूं श्री जोधनेर, सोजत, सिवाणे, मेडते, जैतारण, आमोपादेस इतनी म्हारी धरती छे तिंतरी मांहि बाजा बजाओं झालर, शंख, दमामा, बांजा मात्र बजावता कोई मनाह करें सो गुनहगार होसी। मागसिर वदी ६ सवत् १६६४ दुवे श्री मुखे प्र० भाटी गोइंददासजी पा० जोधनेर ॥ मोहर छाप ॥ श्री पुज्यों के पट्टे और परवानों के देखने से भी पाया जाता है कि विक्रम की १८ वीं

शताब्दी के अंत तक तो राठोर नृप श्री खरतर-गच्छानुयायी ही थे। यथा—

श्री लक्ष्मीनारायणजी मोहर स्वस्ति श्री उपाध्याय गुण-सुदरजी सुं जोग महाराजाधिराज महाराजा श्री जोरावरसिंहजी लिखावतु नमसकार वांचज्यो अपरञ्च इयादिना में थारो कागद न आयो सासदादीया करज्यो। थे म्हारेघणा यात छो। स० १७६३ मिती चेत वद ११ मु० नगर बीकानेर श्री पू० दफ्तर से। इसमें आगे और भी देखिये श्री लक्ष्मीनारा-यणजी मोहर। स्वस्ति श्री महाराजाधिराज राजराजेश्वर नरेंद्र शिरोमणी श्री रतनसिंहजी महाराज कुमार श्री सिरदारसिंहजी वचनात् बणारस में खरतर गच्छरे श्री पूज्यजीरी जागा धर्म-शाला वा मंदिर वगेराह नगर छे। जेमें जति कुशलचन्दजी रहतोच्छो। मो जतिमजकूरतो गुजर गयो छे। हमे इयजगा मजकूर में श्री पूज्यजी सोभागसूरिजी जिकेने रावसी सो रहसी स० १८९३ मिती काती वद १ मु० पायत खत श्री बीकानेर कोट दाखल सही रतनसिंह॥ इस परवाने से भी निश्चय होता है कि राठोडों की तर्फ से खरतरगच्छ वालों को काशीजी में कुछ जागीरी भी दी गई थी और रामघाट का बडा जैन मंदिर तथा धर्मशाला उपासरे वगेरह सब राठोर राजाओं के ही बनाये गये थे। खेर छोड़ता हूं। राठोर भाटी कच्छा वा तथा बाद

शाहों के पट्टे परवाने और फेमलों का मेरे पास खुब सग्रह है जिन्हों की नकल यथा प्रसग दता रहूगा । ज्ञानसुंदर के समान किसी ग्रंथ का केवल नाम मात्र ही लिख कर लोगों को धोका देना यह हमारा काम नहीं है ।

जैन जा० नि पृ० २३ पर ज्ञा० लिखते है कि यतिजी को जरा तो विचार करना था कि बिलकुल झूटी बातों से झाबक, झामड, कैसे मान लेगा कि हमारे गुरु खरतर है ॥ दर असल झामड और झाबक तपागच्छाचार्यों के प्रतिबोधिक श्रावक है ॥ विक्रम की ग्यारमी शताब्दी में किये हुए झामड़ों के सैकड़ों धर्म कार्य है इत्यादि ॥ समी० यह लेख भी ज्ञानसुंदर जी की महा मूढता जाहर करता है क्योंकि ११ वीं शताब्दी में तो तपागच्छ का जन्म भी नहीं हुआ था, तो फिर झाबकों को बनाने वाले तपागच्छ के आचार्य कहां से आगए तपागच्छ की वृद्ध पट्टावली में लिखा है कि राउल श्री जयतसिंह सकल मनुष्य वृन्द समक्ष इंकहि भो भोलो को तुम्हें एसुगी ने आज थकी-तपा कहिज्यों । एतले इं श्री वीरनर्वाण हुया पछा सत्तरमय अने पंचावन वर्ष गयेइ हुते । पुन वि० स० १२८५ वर्षे वैशाख सित त्रीजने दिनि राउल श्री जयसिं हदत्त तपागच्छ विरुद श्री जगचद्रसूरि ने हुयो । एतलै प्रथम पट्टधर श्री सुधर्मा स्वामि थकीनि ग्रथ गच्छ एहवु नाम

प्रथम कहिवाणु। ते आटपाट लगइं एविरुद कहिवाणो १ तिवारपछी नवमइ पाटि श्री सुस्थित स्वामी अनइं सुप्रति बुद्ध स्वामि एविहू गुरु भाईं इकाकदी नगरी इं कोटि वार सूरि मंत्रनो स्मरण कीधो तेथकी। बीजु नाम कोटिक एहवु गच्छ कहि वाणो। ते गच्छ छे पाटल गण विरुद जाणवो २ तिवार पनर में पाटि श्री वज्रसेन सुरीना शिष्य श्री चन्द्रसूरी हुया। तेह थकी चंद्रगच्छ ए त्रीजो ३ पुनः सोलमें पाटि सामंत भद्रसूरि तेनिस्पृहपणे थकी वनने विषेरहिया तेसूरि थकी वनवासी गच्छ ए चोथुं नाम। तेसोले पाटसूधी। तिवारपछी ते त्रीसमें पाटि सर्व देवसुरि ने उद्योतन गुरुइ आबूतलहटी नइ वने वड वृक्ष हेटि आठ शिष्य ने सुरी पदें किधी तेहथी वड गच्छ एहवुपांच मुंनाम ५ एइग्यार पाटलगइं। तिवार पछी चउमालमें पाटि श्री जिणचंद्रे सुरि हुया। तेणइ आयुपर्यंत आंबिल तप करता वर्ष १२ हुया। तिवारि श्री जगचंद्रसुरी ने तपा विरुद हूओ। तेह थकी हवणा छठो तपागच्छ नाम कहिवाणो ६ ॥ जै० सा० सं० पृ० ३९ मूर्ख ज्ञानसुन्दर को इतना भी बोध नहीं कि मूलनास्ति कुतः शाखा, बीजनास्ति कुतस्तरुः ग्राम नास्ति कुतः सीमा, पितानास्ति कुतस्सुत ॥ १ ॥ ऐसे ही सघवी लोढा मुहनोत ढड्ढा आदि प्रसिद्ध खरतरगच्छ के श्रावकों को भी तपागच्छीय प्रति बोधित लिखमारा है। मैने तपागच्छ की पट्टावली विगरे

सैकड़ों ग्रन्थ देखे लेकिन कहीं भी ऐसा नहीं आता कि अमुक तपागच्छीय आचार्य ने किसी को प्रतिबोध देकर ओसवाल जाति में मिलाया हो हिमतविजयजी शिरोही तपागच्छीय विद्वान् यतियों को भी मैंने कई वार पूछा तो, निर्पक्ष होकर उन्होंने एही उत्तर दिया कि हमारे पूर्वजों ने अनेक अच्छे २ ग्रन्थ बनाये इसका तो हमें पूरा अभिमान है। परन्तु अन्य दर्शनियों को जैन कौम में मिला देने का सौभाग्य तो, फक्त खरतर और उप केशाचार्यों को ही प्राप्त हुआ है। इस समय सब ही गच्छ वाले तपागच्छ की क्रिया करने लग गये इसका मूल कारण साधु समाज और देखा देखी है॥ प्रबल-द्वेष के कारण आधुनिक प्राय सब ही तपागच्छीय साधु खरतरगच्छ की काट करते और समाचारी छोड़ाते देखे जाते है परन्तु खरतरगच्छ में ऐसा कोई साधु न होगा कि अन्य गच्छ की काट करता या समाचारी छोडता हो। खैर पृ० ३ पर ज्ञा० लिखते है कि ६ दादाजी ने झावक झावड़ बाफणादि को विजय यंत्र देकर जैन बनाये। कम नशीब बिचारे दिल्लीपती पृथ्वीराज चौहान का, कि जिनको ऐसा विजय यत्र न मिला, जिसीसे आर्य भूमि सदा के लिये-म्लेच्छों के हाथों में चली गई" समीक्षाः—

यत्र मत्र मणी औषधी और देवताओं में अचिन्त्य शक्ति सभी ही आस्तिक जन मानते हैं। कम नशीब बिचारे

ज्ञानसुन्दर जैसे नास्तिकों का कि-उन्हारों सूरि मन्त्र कल्प, ह्रीं कार कल्प, नमस्कार- मंत्र कल्प और भक्तामरस्तोत्र आदि प्रभाविक ग्रन्थों की शुद्ध अम्नाय बताने वाला सु गुरु का योग न मिला, जिससे ही वह जैनाचार्यों की यन्त्र प्रयोग क्रियाओं को गप्प समझता है।

- अजमेर में श्री जिनदत्तसूरिजी का स्वर्गवास हुआ तब पृथ्वीराज केवल ५ वर्ष के थे। अगर गुरु ४५ वर्ष और जिन्द रहत और हिन्दू राजे- आपस की इर्षाओं को छोड़ क जैन होजाते तो आर्यों का म्लेच्छों से सर्वनाश कभी नहीं हो सकता था। असली जैन वही है जो शत्रुओं को जीते ज्ञ नसुन्दरजी बीकानेर खरतरगच्छीय श्री पूज्यों को प्राचीन दफ्तर देखे लेख ज्यों का त्यों यह है। अथश्री जिनदत्तसूरिजी तुर काणी हटाइ तिणश विरुद लिख्यते। दु० जग में जिनवल्लभ जयो। चंद सूरज दोय शाखी। पत्यो इग्यारेसे। पचीस को। तब महीरु लती राखी। श्री जिनदत्तसुरि विरुद। इग्यारेसै गुणतेरे। इन्द्र इद्राणी आया। इग्यरेसे गुणतर देव भूमि पर छाया। इग्यारेसगुणंतरे पृथ्वी मिल मंगलगा। इग्यारेसे-गुणतर राजतिलक महागाया॥ तखत उजाल जिनवल्लभ जगत पाप पडल दु.ख दूरजे। अखियात छात जल हल जगत, तपा जिणदत्तसूरिजे ॥ १॥ आज वहां उच्छरग पृथ्वी

मंगल गाईजे । आज बडो उच्छरंग पृथ्वी मंगल छाईजे आज बडो उच्छरंग पृथ्वी सुरराज विराजे । आज बडो उच्छरंग पृथ्वी सुरतरु छाजे ॥ आकाश ज्योति उद्योत जग, पृथ्वी जीत पाटैमुदो । जिनदत्तसूरि हाजिर हजूर, प्रगट राज माले उदो ॥ २ ॥ सकल देव जिनदत्तसूरि प्रत पैमाल पर । सकल देव जिनदत्तसूरि करे आरती थाल भरे । सकल देव जिनदत्तसूरि करे नृत्य आगल भाई भाई । सकल देव जिनदत्तसूरि फिरे सब देव दुहाई । प्रत पंछत्र वाछिगहरा नदी नीर नाला रहे, कहे धरण आकाश विच श्री जिनदत्त आणा वहे ॥ ३ ॥ चोमठ योगिनी जीत वीरबावन नित हाजर । पकड़ बीजली हाथ पचपीर पकड़ पिया गाजर । तुरक पीर उगणीश देख गया सब भाजर । धरणी पती कुपकड़ पकड़े माणभद्रक नाजर । देख सबल जिनदत्तकु, रह्यो न देवत धरनिचे । सुरपति नितपृथे जीत पट्ट, ऐसो कहण कुंहम जर्चे ॥ ४ ॥ देव पराक्रम देख पीर फिरे सब डरता । देव पराक्रम देख, शाहा आवे डिग भरता । देव पराक्रम देख ऊचा बद बराबर । देव पराक्रम देख, विराजे गज सवा पर । हिन्द वाणी देव तुरकाणी सह करजोड्या हाजर खड़ा । जिणदत्त आणतप तेजभाण करे आरती चोलड़ा ॥ ५ ॥ मुओजीयो मुगल्ल मुगल्ल पसरी धरण पर । मुओजीयो पठाण तुरकाण सुखियो करण रूर । मुओजीयो चिहल्ल सम

सेरखां कावल । मुश्रोजीयो काश्मीर गुल शेरखां रावल । मुश्रोजीयो मुलताण में साहिखां सुलताणरो । देख निवाव निश्चय हुश्रो परचो जिणदत्त श्रापरो ॥ ६ ॥ परचो पतिख देख मिल्या कावल रा काजी । परचो परितिख देख फिर मव नाठा पाजी । काजी मुल्ला गल्ल पीर इनों नेपकर्या । ऐमी घर घर श्रख साहलेर्या पिण सकर्या । हुश्रो नघरण आकाश बीच मिली दिल्ली साह जिहानसु । देव पराक्रम देख छिप्र रह्या सब्कण्यु म्यानसु ॥ ७ ॥ पृथ्वीजीन पदपायो राजाश्रों ने पापमार्ग हिंसा छोडाय श्रापरे वसकिया ॥ मन में राज विचारे करां कार्यलाख विध उच्चो । प्रथम तीर्थं कर क्रम एकमो श्राट सम्रुच्चो । गच्छ तिलक वडराज रहे श्रखूट सदाई । देव दागव नह च्याण प्रगट उद्योत पुन्याई । कोई एक जोग राजा सबल मिल्या एक ठमाण मह । चहुश्राण परमार शोलक वर मरी पढ्या हुश्रा थाण सहा ॥ ८ ॥ बड़ा बडा भूपाल मिल्या शहर विक्रमपुर में, जात जात क्षत्रियवट श्राण जुड्या नर सुर में । वणी फौज दश क्रोड मिल्या अढी सौ राजा । वाजन छत्र चामर ढुले किरणे तपै सहम्रा । देव प्रकोपमरी भय सरम भीत राजा पाया घणा । लाखान् लाख मरी रोगसु गल्या समंधर कहँ वैसणा ॥ ६ ॥ आया श्री पूज्य पास लगें पायें दोलत निजर अरज । करे करी आश अशरन गती को देवघर । तारण जगत जिहाज सुग्रद नित

तुमचै लगे । करे कृपा सूरिराज दान जीवित दो दुःख मगैं सरणाई साधार रम अघटालो मारो भरी । जालत पाप छाडत जंत हुक्कम हुओ महारा सिरी ॥ १० ॥ हुक्कम हुओ श्रीराज नरपति कर जोड्या । जीव सकल प्रतिपाल च्रमा मन मौ नहीं खोड्या । तप जप क्रिया दान मान मन मौं नहीं मोड्या । चढती ऋद्धि समृद्धि मत्र नरकारकन छोड्या चढती ज्योति चढती कला, गच्छ हुक्कमपालि राखज्यो । तप तेज देख राजा सकल, कहै "पृथ्वी जीत पद" भाखज्यो ॥ ११ । इग्यारामे इक्याशीय अखयतृतीया आखी । बड नगेर ब्रह्ममेण राज तिलक निर्धा दाखी । बाजी रथ गयन्द खास पालखी समेला । मोतियें थाल बधाय हुआ राजेन्द्र सहु मेला । तिण नगेर ब्रह्म धूढड बडो, गोमृत देहरे नखी । दिन मात रात दुखिया घणा, मातस ब्राह्मण कीया सखी १२ नाके नथैं घताय कीया सह बाली वेशैं, चाचे घुमे नृत्य करैं सहु दशैं देशैं । बरस पांच अथ सात हुआ देखै सह माडा । मुआ गया के ही रह्या सहु चूगली चाडा खलक लोक जिणदत्त पये ब्रह्ममेण भोजन कर्यो । पाछे लोक पांती पड्यो, जद जीम भोजन भोजक धर्यो ॥ १३ ॥ इति दादा श्री जिनदत्तसूरिजी " त्रिभुवन गुरुराज तिलक " पद नृपैर्दत्त ॥ यह कविता श्री जिनदत्तसूरिजी के समय की ही बनी हुई है ॥

। ० निर्पत्त होकर देखें ॥ आगे पृ० २४ पर गांदियादि का

गच्छ तपा बताया सो भी मिथ्या है ॥ ज्ञानसुंदर माई सैलाना निवासी रा० शेरसिंहजी गौड़ वंशीय कृत श्री जिनदत्त चरित्र देखें, उसमें लिखा है कि श्री जिनदत्तसूरिजी ने राठोड पंवार चौहान सोलंकी और पडिहारादि अनेक क्षत्रियों को जैन बनाये जिन्हों के कितनेक गोत्र नीचे दिखाये जाते हैं। गहटा रांका भणशाली नवलखा डागा बहुफणा लूणिया बोथरा चौपडा छाजेड़ बरडिया सचेती कोठारी पारख गुलेच्छा श्रावक धाड़ीवाल शेखावत नाहर घलाई बछावत हरकावत दूधेडिया खजानची पुंगलिया काकरिया बाठिया कटारिया सेठिया पटवा फोफलिया पडेर महेता दफतरी मुकीम दुगड जन्नाणी भंडारी लुणावत सुखाणी लोढ़ा जालौरी नवरिया और श्रो श्री माल ४४ आदि अनेक गोत्र स्थापन कर आचार्य श्रीने अपरिमित उपकार किया है। श्री जि० च० पृ० ६६ ॥ इस में बाठिये श्रावक श्रीजिनदत्तसूरिजी प्रतिबोधित और खरतर गच्छीय लिखा है ॥ उ० रामलालजी का झूठा नाम लेकर पृ० २४ पर ज्ञानसुन्दर लिखता है। बा० लि० रणत भौवर के पवार राजा, लालसिंह के पुत्र जलधर का रोग हुवा था, वि० सं० ११६७ में जिनवल्लभसूरिजी ने चिकित्सा कर जैन बनाया ॥ ममी० ॥ हमने महाजन वंश मुक्तावली, आद्योपान्त अच्छी तरह से देखी परन्तु कहा भी नहीं पाया कि श्री जिनवल्लभसूरिजी ने किसी गृहस्थ को

चिकित्सा की हो। ग्रंथकर्त्ता का तो यह लिखना है कि गुरु ने चामुन्डा देवी को हुकम देकर राजकुमार के शरीर में आराम करवाया था, तब राजा ने ७ सात पुत्रों समेत जैन धर्म स्वीकार किया। राजा का प्रथम पुत्र बडा बंड योद्धा था, अतः उनकी सन्तान वाले सभी बठ कहलाये, जिनों में चिमनसिंह ने अनेक जैन मन्दिर और धर्माश्रमों का जीर्णोद्धार कराया और मंघ महित तीर्थराज श्रीशत्रुंजय की यात्रा जाते प्रति ग्राम में प्रति मनुष्य को एकेक मोहर (सुवर्णमुद्रा) बांटी, इसी कारण से चिमनजी के परिवार वाले सभी महाजन बांठिये (बाठिये) कहलाये। आज कल ये लोक मारवाड फलोदी बीकानेर जैसलमेर आदि में बसते हैं। खासगच्छ तो इनों का खरतर ही है परन्तु संगत पाकर पायचंदीया ढुंढिया आदि हो गये हैं। विक्रम की १२ वीं शताब्दी में चौहानों के सिवाय रणथंभोर में अन्य राजपूतों का राज्य न मानना यह भी ज्ञानसुन्दर का मिथ्या हट है। ज्ञानसुन्दर भाई को यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिये कि योग्य जागीरदार को भी कवि लोक राजा ही मानते और लिखते हैं। बड़े २ राजाओं की तरफ से योग्य राजपूतों को राजा, महाराजा, राव, महाराव, राणा, महाराणा और राय बहादुर आदि पदवीया मिलती थीं और उन्ही महान् पुरुषों को धर्मोपदेश ॰ हमारे धर्माचार्य जैन बनाते थे। दर असल लालसिंह

यादुओं की एक शाखा मारण (टाटू) जाति का राजा था। देखो सिद्धांत मग्नसागर प्रथम भाग पृ० ४६–५० पहिले इतिहासों को देख कर फिर कुछ लिखता तो ज्ञानसुन्दर की तारीफ थी। खैर अब भी ज्ञानसुन्दर भाई पृथ्वीराज रासा अच्छी तरह से देखें। उस में लिखा है कि आनाराज की माता गौरी रणथंभोर के यादव राजा की बेटी थी। महाराज पृथ्वीराज की राणी इच्छावती भी रणथंभोर के यादव राजा की पुत्री थी। यादव ५६ कोटि (प्रकार) के थे, जिनों में मारण भी एक भेद है। उन्हीं को रामलालजी ने परमार लिखा है। मारण, परमार और पँवार इन तीनों को ऐतिहासज्ञ एक ही मानते है। हुमायू के समय में कुछ फर्क है परन्तु हम पहिले ही लिख आये है कि यह महाजन वंश मुक्तावली प्रायः प्राचीन कवित्ताओं के आधार पर लिखा गया है। और कवियों का (अनंद) संवत् वर्त्तमान विक्रम में से ६१ वर्ष घटा देने पर होता है।

सोने के बर्तन चिमनजी ने पीतल के भाव मोल लिये इस में भी कोई ताज्जुब नहीं है। कारण कि वक्त का मोल होता है। पीतल की ही क्यों कहे हमारे श्रावक राय बहादुर श्री बद्रीदासजी के पिताजी ने जब लखनउ में मुसलमान और अंग्रेजों के लडाई हुई थी तब महान् कीमती २ जौंहारात और

सोने के जेवर तथा वर्त्तन नाज के बराबर मोल लिये थे। ज्ञानसुन्दर भाई अपना मान्य भारत का प्राचीन राज वंश प्रथम भाग अच्छी तरह से देखें, राव हमीर और अलाउद्दीन बादशाह के जब लड़ाई हुई उस समय रण थंभोर में चावलों की कीमत सोने से भी दुगुणी हो गई थी। अर्थात् एक सेर चावलों के बदले में दो सेर सोना दिया जाता था,, तो सोच लूट के माल को घर ले जाने में सुभीता न देख,, मुसलमानों ने चिमनजी को सोने के बरतन पीतल के भाव बेच दीये, इस में क्या असंभव है। आगे ज्ञान सु० पृ० २६ पर लिखते हैं कि जब यतिजी वि० सं० ११७८ में दादाजी ने चंदेरी के राठोड राजा को प्रतिबोध दिया लिखा यह बिलकुल मिथ्या नहीं तो और क्या है। दरअसल जिनदत्तसूरि के १६०० वर्ष पहिले आचार्य रत्नप्रभसूरि ने ओसीया में महाजन वंश के १८ गोत्र स्थापन किया था। जिस में ११ वा गोत्र आदित्य-नाग, जिसकी शाखा चोरडिया गुलेच्छा पारख आदि हैं। समीक्षाः—

ज्ञानसुन्दरजी का अभिप्राय खरतरगच्छ के सबही ओसवालों को अपना माना हुआ कंवलागच्छ में खींच लेने का है। इसीही कारण से यह पुस्तक लिखी गयी है। मगर समझो कि यह सर्व मिथ्या प्रलाप है। मूर्खों की बातों को

मूर्ख ही मानेंगे, विद्वान नहीं मान सके कि ओसवाल जाति जिनदत्तसूरिजी से १६०० वर्ष पहिले की पुराणी है। ज्ञान-सुन्दर भाई श्वेताम्बर जैन अखबार ता० २० दिसम्बर सं० १९२८ का देखें। रा० पं० गौरीशंकरजी ओझा लिखते हैं कि उत्पलदेव का ओसिया नगर बसाना आदि सबै बातें कल्पित है। कारण कि ओसिया इतनी पुराणी नहीं है। एक ओसिया ही क्या, जल में धुली हुई मारवाड की रती को देख कर विज्ञान वेत्ताओं ने निर्णय कर लिया है कि आज से दो हजार वर्षों के पहिली यह समस्त प्रदेश समुद्र के जल में डूबा हुआ था। समुद्र के जल के भीतर आपस में घिस कर गोल बने हुए शिलाचीयों के उपर बीकानेर बसा हुआ है। बीकानेर की कंकरीला भूमी के अन्दर गुफाओं में आज भी मगर और कछुओं की हड्डियां निकलती हैं। इस से निश्चय होता है कि थोडे ही वर्षों पहिली यहां समुद्र था। भूवेत्ताओं को पूछ कर ज्ञानसुन्दरजी निश्चय करलें कि क्या हमारे रत्न-प्रभासूरी आज से ढाई हजार वर्षों के पहिली ही जल जन्तुओं को प्रतिबोध देने के लिये यहां आये थे। अपने अपने गच्छों की बडाई के लिये ही ज्ञानसुन्दर जैसे मूर्ख ग्रन्थकारोंने सत्य जैन सूत्रों की महिमा घटाई है। हकीकत में ओसवाल जाति किसी की बनाई हुई नहीं है। "अश्वपाल" घोड़ों को पालने वाले। यह गुण निष्पन्न नाम चंद्रवंशी राजपुतों की एक

सोने के जेवर-तथा बर्त्तन नाज के बराबर-मोल लिये थे । ज्ञानसुन्दर भाई अपना मान्य भारत का प्राचीन राज वंश प्रथम भाग अच्छी तरह से देखें, राव हमीर और अलाउद्दीन बादशाह के जब लड़ाई हुई उस समय रण थंभोर में चावलों की कीमत सोने से भी दुगुणी हो गई थी । अर्थात् एक सेर चावलों के बदले में दो सेर सोना दिया जाता था, तो मात्र लूट के माल को घर ले जाने में सुभीता न देख, मुसलमानों ने चिमनजी को सोने के बर्त्तन पीतल के भाव बेच दीये, इस में क्या असंभव है । आगे ज्ञान सु० पृ० २६ पर लिखते हैं कि जब यतिजी वि० सं० ११७६ में दादाजी ने चंदेरी के राठोड राजा को प्रतिबोध दिया लिखा यह बिलकुल मिथ्या नहीं तो और क्या है । दरअसल जिनदत्तसूरि के १६०० वर्ष पहिले आचार्य रत्नप्रभसूरि ने ओसीया में महाजन वंश के १८ गौत्र स्थापन किया था । जिस में ११ वा गौत्र आदित्य-नाग, जिसकी शाखा चोरडिया गुलेच्छा पारख आदि हैं। समीक्षा: —

ज्ञानसुन्दरजी का अभिप्राय खरतरगच्छ के सबही ओसवालों को अपना माना हुआ कंवलागच्छ में खींच लेने का है । इसीही कारण से यह पुस्तक लिखी गयी है । मगर समझो कि यह सर्व मिथ्या प्रलाप है । मूर्खों की बातों को

पूर्व ही मानेंगे, विद्वान नहीं मान सके कि ओसवाल जाति जिनदत्तसूरिजी से १६०० वर्ष पहिले की पुराणी है। ज्ञानसुन्दर भाई श्वेताम्बर जैन अखबार ता० २० दिसम्बर स० १९२८ का देखें। रा० पं० गौरीशंकरजी ओझा लिखते हैं कि उत्पलदेव का ओसिया नगर बसाना आदि सर्व बातें कल्पित हैं। कारण कि ओसिया इतनी पुराणी नहीं है। एक ओसिया ही क्या, जल से धुली हुई मारवाड़ की रेती को देख कर विज्ञान वत्ताओं ने निर्णय कर लिया है कि आज से दो हजार वर्षों के पहिली यह समस्त प्रदेश समुद्र के जल में डूबा हुआ था। समुद्र के जल के भीतर आपस में घिस कर गोल बने हुए सिलभीयों के उपर बीकानेर बसा हुआ है। बीकानेर की कंकरीली भूमी के अन्दर गुफाओं में आज भी मगर और कछुओं की हड्डीयां निकलती हैं। इस से निश्चय होता है कि थोड़े ही वर्षों पहिली यहां समुद्र था। भूवेत्ताओं को पूछ कर ज्ञानसुन्दरजी निश्चय करलें कि क्या हमारे रत्नप्रभासूरी आज से ढाई हजार वर्षों के पहिली ही जल जन्तुओं को प्रतिबोध देने के लिये यहां आये थे। अपने अपने गच्छों की बड़ाइ के लिये ही ज्ञानसुन्दर जैसे मूर्ख ग्रन्थकारोंने सत्य जैन सूत्रों की महिमा घटाई है। हकीकत में ओसवाल जाति किसी की बनाई हुई नहीं है। "अश्वपाल" घोड़ों को पालने वाले। यह गुण निष्पन्न नाम चंद्रवंशी राजपूतों की एक

समुदाय का ही नाम है जिसका अपभ्रंश 'ओसवाल' हो गया है। पहिले ये लोग भीनमाल की तरफ रहते थे। जब वहां अनार्यों का आक्रमण हुआ तो, अपना जान माल लेकर इस जंगल देश में ये लोग आ रहे। शुरु से तो ये लोग जैनी ही थे परन्तु कारण पाकर जैन धर्म से पतित प्रायः हो गये थे, जिन्हों को जैनाचार्यों ने फिर से शुद्ध कर लिये हैं। ज्ञा० अपनी पट्टावली देख लिखा है कि-चन्द्रवंशीय दो भ्राता ऊहड १ उद्धरण २॥ ढीलीपुर राजा श्री साधू तस्य ऊहडेन ५५ तुरंगमा भेटी कृता, उवएषा संतुष्टोददौ, ततोभीनमालात् अष्टादश सहस्र कुटुम्ब अगात्, द्वादश योजना नगरी जाताः॥ उ० प० पृ० ४॥ ज्ञानसुन्दर भाई को तहकीकात करना चाहिये कि दिल्ली (ढीली) नगरी कब किस ने बसाई और ऊहड को जागीरी देने वाला साधु राजा कब हुआ। इसी से रत्नप्रभसूरिजी का भी पता मिल जायगा कि वे कब हुए हैं। और अब चोरडियों के बारे में विद्वानों की सम्मति देखिये, रा० सेरसिंहजी गौड लिखते हैं कि-पूर्व देश में चन्देरी नाम की एक नगरी थी. उस में खरहत्थ नाम का राजा राज्य करता था, उस के अम्बदेव निम्बदेव भैशाशाह और आश्पाल नाम के चार पुत्र थे। ये चार बड़े ही सुनीत और अति ही पराक्रमी थे। एक समय अनेक योद्धाओं को लेकर यवन सेना हिन्दुस्थान में पानी के पूर की तरह से आ घुसी

और अनेक प्रान्तों को लूट कर अगणित द्रव्य लेकर अपने देश को रवाना हुई। यह समाचार राजा के सुनने में आया तो वह उसी समय ४ पुत्रों सहित कुछ सेना लेकर यवन सेना के पीछे टूट पड़े। यद्यपि महाराज खरहत्थसिंह की सेना शत्रु की सेना से बहुत ही कम थी, तथापि वीरता में कम न थी। सच है आग की एक चिणगारी भी हजारों मण रूई को चण भर में भस्म कर देती है। ठीक इसी ही तरह क्षुद्र सेना को नष्ट कर सर्व द्रव्य तथा युद्ध में शस्त्र घायल हुए अपने चार पुत्रों को ले कर अपने नगर में आ गये। परन्तु किसी के मुख पर हर्ष का कुछ भी चिन्ह नहीं था। कारण राजा को चत पीडित अपने चारों ही पुत्रों के जीने की आशा न थी। अनेक इलाज कराये लेकिन कोई फायदा न हुआ। उन्हों की यह हालत देख राजा की निराशा और घबराहट बढती ही गई। इस विषम और दुःखावस्था में पुण्य संयोग ग्रामानुग्राम विचरते हुए वि० स० ११६१ में युग प्रधान श्री जिनदत्तसूरीश्वरजी महाराज पधार गये। यह शुभ समाचार सुनते ही राजा गुरु के पास जाकर चरणों में गिर पड़ा और रोकर सब दुःख प्रगट किया। यह देख गुरु महाराज को बड़ी दया आगई और एक देवी को हुक्म देकर चारों ही राज पुत्रों के शरीर में आराम करवाया। इस प्रभाव को देख सकल जन दादा

समुदाय का ही नाम है जिसका अपभ्रंस 'ओसवाल' हो गया है। पहिले ये लोग भीन्नमाल की तरफ रहते थे। जब वहा अनार्यों का आक्रमण हुआ तो, अपना जान माल लेकर इस जंगल देश में ये लोग आ रहे। सुरु से तो ये लोग जैनी ही थे परन्तु कारण पाकर जैन धर्म से पतित प्रायः हो गये थे, तिन्हों को जैनाचार्यों ने फिर से शुद्ध कर लिये हैं। ज्ञा० अपनी पट्टावली देखें लिखा है कि–चन्द्रवंशीय द्वौ भ्राता ऊहड १ उद्धरण २॥ ढीलीपुरे राजा श्री साधू तस्य ऊहडेन ५५ तुरंगमा भेटी कृता, उवरणा संतुष्टोददौ, ततोभीनमालात् अष्ट दश सहस्र कुटुम्ब अगात् । द्वादश योजना नगरी जाताः ॥ उ० प० पृ० ४ ॥ ज्ञानसुन्दर भाई को तहकीकात करना चाहिये कि दिल्ली (ढीली) नगरी कब किस ने बसाई और ऊहड को जागीरी देने वाला साधु राजा कब हुआ। इसी से रत्नप्रभसूरिजी का भी पता मिल जायगा कि वे कब हुए हैं। खैर अब चोरडियों के बारे में विद्वानों की सम्मति देखिये, रा० सेरसिहजी गौड लिखते हैं कि–पूर्व देश में चन्देरी नाम की एक नगरी थी. उस में खरहत्थ नाम का राजा राज्य करता था, उस के अम्बदेव निम्बदेव भैशाशाह और आशपाल नाम के चार पुत्र थे। वे चार बड़े ही सुशील और अति ही पराक्रमी थे। एक समय अनेक योद्धाओं को लेकर यवन सेना हिन्दुस्थान में पानी के पूर की तरह से आ घुसी

और अनेक प्रान्तों को लूट कर अगणित द्रव्य लेकर अपने देश को रवाना हुई। यह समाचार राजा के सुनने में आया तो वह उसी समय ४ पुत्रों सहित कुछ सेना लेकर यवन सेना के पीछे टूट पड़े। यद्यपि महाराज खरहत्थसिंह की सेना शत्रु की सेना से बहुत ही कम थी, तथापि वीरता में कम न थी। सच है आग की एक चिणगारी भी हजारों मण रूई को क्षण भर में भस्म कर देती है। ठीक इसी ही तरह क्षुद्र सेना को नष्ट कर सर्व द्रव्य तथा युद्ध में शक्त घायल हुए अपने चार पुत्रों को लेकर अपने नगर में आ गये। परन्तु किसी के मुख पर हर्ष का कुछ भी चिन्ह नहीं था। कारण राजा को घाव पीडित अपने चारों ही पुत्रों के जीने की आशा न थी। अनेक इलाज कराये लेकिन कोई फायदा न हुआ। उन्हों की यह हालत देख राजा की निराशा और घबराहट बढ़ती ही गई। इस विषम और दुःखावस्था में पुण्य संयोगे ग्रामानुग्राम विचरते हुए वि० सं० ११९२ में युग प्रधान श्री जिनदत्तसूरीश्वरजी महाराज पधार गये। यह शुभ समाचार सुनते ही राजा गुरु के पास जाकर चरणों में गिर पड़ा और रोकर सब दुःख प्रगट किया। यह देख गुरु महाराज को बड़ी दया आगई और एक देवी को हुक्म देकर चारों ही राज पुत्रों के शरीर में आराम करवाया। इस प्रभाव को देख सकल जन दादा

साहब की नाना विध भक्ति और स्तुति करने लगे कि ध
हे गुरुदेव तुम्हारी असीम करुणा और इम जैन धर्म के
राजा भी गुरुदेव का उपदेश पाकर अनेक क्षत्रियों के स
जैनी होगया। एक समय राजा के बड़े पुत्र अनदेव ने अ
गान के नामी २ चौरों को पकड़ २ कर बेड़ियों में डाल दि
थे, इसी कारण से उनका और उनके संतानों की चौर बेड़ि
सज्ञा हुई, उन्हीं को अब लोग चौरांडियों कहने लग गये
मूल में तो ये लोक राठोड़ ही है परन्तु चौर बोडिया न
प्रसिद्ध होने पर भी इन्हीं में से तेजाणी धन्नाणी पोपा
मोलाणी गल्लाणी देवसयाणी नाणी श्रवणी सद्दाणी क
मक्कड भक्कड लोटकणा संसाग कोचेरा भट्टारकिया पीतल
सोनी फलोदीया रामपुरिया संपार्खा २१ अनेक गौत्र उत
हुए हैं। राजा के दूसरे पुत्र निंबदवकी संतानों में से किसी
भटनेर की चोधराई (पचायती) की थी अतः उन्हीं
औलाद वाले भटनेरा चौधरी नाम से प्रसिद्ध हुए। राजा
तीसरा पुत्र भैमाशाह के पाच पुत्र थे उन्हों में से बड़ा कुंवर
नाम का ज्योतिष निमित और शकुनादि शास्त्रों का
वेत्ता था। एक समय परीक्षा के लिये चित्तोड़ के राणा
बुलाकर उन्हों से पूछा कि कहो कुंवरजी इस साल में श्राव
और भादवा के साक होगा। कुंवरजी ने आसमान
तर्फ देख उत्तर दिया कि श्रावण सूका भाद

राणाजी बोले क्या श्रावण सूका ? कुंवर०
ने कहता हु श्रावण शुका ठीक वैसा हुआ। यह देख
कुंवरजी का नाम पाड दिया श्रावण सूका। इसी
ण से कुंवरजी की औलाद वालों का भी श्रावण सूका
सिद्ध हुआ॥ भैंसाशाह के दूसरे पुत्र गूलजी के वंशज
ा कहाये। तीसरा पुत्र बच्छराजजी के कोई पुत्र न था।
गुलराजजी का ही एक पुत्र गौद जाकर उनों का
नाम गोलवच्छा गौत्र प्रसिद्ध हुआ। चौथे पासुजी
हड नगर के चन्द्रसेन राजा ने जवाहिरात की परीक्षा
ते अपने पास जागीरी देकर रक्खा था अतः उन्हों
ौलाद वाले पारख कहलाने लगे। पांचवे गद्दाशाह के
गद्दहिया गौत्र से प्रसिद्ध हुए॥ महाराज खरहत्थसिंहजी
ये पुत्र आशपालजी से आशाणी गौत्र प्रगट हुआ।
० च० पृ० ॥ ६४ ॥ आगे पृ० ज्ञा० लिखते हैं कि
ल ता चंदेरी पूर्व में नहीं किंतु मालवा में है। दूसरा
ी में राठोडों का राज्य नहीं किंतु चेदि वंशीयों का
था। समी० एक नाम की संसार भर में एक ही नगरी
निश्चय करलेना यह भी ज्ञानसुंदर की बडी मूर्खता है।
सुदर भाई अपना माना हुआ भा० प्रा० राजवंश भाग ३
ी तरह से देखें उसमें राठोड गहड़वाल और चंदेलों को
ही वंशज लिखा है। और यह भी देखना चाहिये कि